मित्रसेन

*

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

मित्रसेन

लेखक

मगन पथिक

अनुवादक

सुरेन्द्र प्रसाद साह

साहित्य अकादेमी

Mitrasen : Hindi translation by Surendra Prasad Sah of Magan Pathik's monograph in Nepali. Sahitya Akademi, New Delhi (1992), Rs. 15.

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1992

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, बम्बई 400 014

109, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-7201-318-3

लैज़र-सैटिंग : वैलविश पब्लिशर्स
पीतमपुरा, दिल्ली 110 034

मुद्रक
सुपर प्रिन्टर्स, दिल्ली 110 051

अनुक्रम

युग-प्रभाव

बहुप्रतिभा सम्पन्न मित्रसेन का जीवनकाल (1875-1946ई.) भारतीय नेपाली साहित्य के इतिहास का एक गौरवशाली युग है । इस अवधि में देश के अन्दर आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत हलचल मची हुई थी । विवेकानन्द, रामतीर्थ तथा लोकमान्य तिलक के दौर के समाप्त होते ही सम्पूर्ण भारत में महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन ने बहुत अधिक प्रभाव जमा लिया था । उक्त महापुरूषों से प्रेरणा पाकर प्रत्येक भाषा के अनेकानेक साहित्यकारों द्वारा उत्कृष्ट साहित्य का सृजन होना स्वाभाविक ही था । रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरच्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण, प्रेमचन्द, इक़बाल, हसरत मुरादाबादी, अकबर इलाहाबादी या जोश मलीहाबादी इत्यादि बाङ्ला, हिन्दी या उर्दू के प्रतिष्ठित कवि, कथाकार, साहित्यकार एवं शायर इस युग के वरदान थे । इस काल में भारतीय गोरखाली लोगों की मातृभाषा (नेपाली) में साहित्य सृजन करनेवाले लेखकों में धरणीधर शर्मा, सूर्य विक्रम ज्ञवाली, पारसमणि प्रधान, ठाकुर चन्दन सिंह (पत्रकार), बहादुर सिह बराल तथा मित्रसेन के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं ।

मित्रसेन एक कवि, नाटककार, निबन्धकार, अनुवादक, गायक, संगीतकार तथा समाज सुधारक थे । आठ वर्ष (1912-1920) के सैनिक जीवन का अधिकांश भाग, प्रथम विश्वयुद्ध के समय यूरोप, अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों में व्यतीत करने के कारण, वहाँ प्रत्यक्षतः देखे भयंकार रक्तपात के दृश्यों ने भावुक विचारशील युवा मित्रसेन के मन में बहुत बड़ी हलचल पैदा कर दी थी । विदेश

से भारत वापस आते ही पच्चीस वर्ष की उम्र में मित्रसेन ने सैनिक जीवन से सदा के लिए मुक्ति ले ली । शेष जीवन के पच्चीस वर्ष उन्होंने गीत-संगीत की साधना, नाटक-प्रदर्शन, साहित्य-सृजन तथा समाज सुधार के कार्यों में व्यतीत किए । इस बीच उन्होंने गीता-महाभारत के प्रसंगों को लेकर सात गीति-खण्डकाव्यों की रचना नेपाली भाषा में की । युवा-जागरण के उद्देश्य से लिखे खण्डकाव्य—परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, भक्त प्रहूलाद, चन्द्रहास एवं वीर अभिमन्यु तथा नारी-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर लिखे अन्य खण्डकाव्यों में एकादशी, व्रतकथा, सत्यनारायण-कथा, बिल्वामंगल, चिन्तामणि एवं सन्त सखुबाई इत्यादि रचनाओं ने नेपाली साहित्य के भंडार में अभिवृद्धि की है । नाटकों में उन्होंने कृष्ण-जन्म, प्रभु-शक्ति, श्रवणकुमार, भक्त सूरदास, वीर अभिमन्यु इत्यादि लिखकर रंगमंच पर प्रस्तुत किया । साथ ही ध्रुव भक्त, राजा हरिश्चन्द्र, द्रौपदी चीरहरण, स्वस्थानी व्रतकथा (शिव-पार्वतीकथा), कृष्ण-सुदामा तथा सत्यवान-सवित्री नाटकों की रचना कर ग्रामोफोन रेकार्डिंग तक कराई । इस प्रकार, मित्रसेन ने भारतीय विचार और संस्कृति लाखों नेपाली भाषी लोगों के बीच फैलाने का प्रयास किया । 'हितकोकुरा', 'उन्नति को साँचो' तथा 'गहिरो खोज' पुस्तिकाओं में उन्होंने निबन्धों के रूप में आध्यात्मिक या मानवीय मूल्यों की व्याख्या अत्यन्त सरल भाषा में की है । लोक गीत की प्रसिद्ध "झ्याउरे" शैली में लिखी उनकी रचनाएँ तथा उनके द्वारा गाये गीत और भजन आदि के बहुत सारे रेकार्ड आज भी गोरखाली-संसार में लोकप्रिय हैं । महात्मा बुद्ध और विश्वविख्यात लेखक टाल्सटाय के प्रति भी प्रगाढ़ आस्था या श्रद्धा रखनेवाले मित्रसेन ने विस्तारपूर्वक बुद्धवाणी का अनुवाद किया तथा टाल्सटाय की कुछ उत्कृष्ट कहानियों का गद्य एवं पद्य-दोनों विधाओं में अनुवाद किया जो उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है ।

दासता के उस काल में शोषण या अशिक्षा पूरे समाज में व्याप्त थी । फलस्वरूप, अनेक प्रकार की नैतिक या सामाजिक त्रुटियाँ दिखाई पड़ती थीं । निर्धन और अशिक्षित समाज में जागृति पैदा

करने के उद्देश्य से मित्रसेन साहित्य-सृजन के साथ-साथ अपनी संगीत एवं नाट्य कला की प्रतिभा का भी भरपूर उपयोग करना चाहते थे । इसलिए, उनके समस्त पद्य-साहित्य में गायन शैली का प्रयोग पाया जाता है । लिखने के बाद रचना को गाकर सुनाना उन्हें अच्छा लगता था । नाटक लिखकर तथा रंगमंच के लिए तैयार करके जहाँ-तहाँ दिखाते जाना उनकी दूसरी धुन थी । छोटा-मोटा भजन, गीत और नाटक इत्यादि सभी सुन और सीख सके—इस विचार से प्रेरित होकर मित्रसेन ने ग्रामोफोन रेकर्डिंग तक की व्यवस्था की थी । पुस्तक के प्रकाशन का झंझट उन्होंने नहीं किया क्योंकि उस समय के अशिक्षित या निर्धन समाज में शायद इसका उतना महत्व नहीं था या धन का अभाव इसका दूसरा कारण हो सकता है ।

इस शताब्दी के तीसरे दशक में पंजाब में आर्य समाज एवं सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा का खूब बोलबाला था । मित्रसेन ने 1928 से 1932 तक चार वर्ष लगातार सनातन धर्मप्रतिनिधि सभा के तत्त्वावधान में धर्मोपदेशक की हैसियत से पंजाब के पश्चिमी क्षेत्रों में गाँव-गाँव तथा जगह-जगह घूम-घूमकर प्रचार-कार्य किया । उनके प्रचार का माध्यम उर्दू-हिन्दी मिश्रित हिन्दुस्तानी भाषा था । उसी समय लाहौर के प्रसिद्ध शायर मोहम्मद इक़बाल की उत्कृष्ट शायरी के प्रभाव के कारण मित्रसेन को अपने निवासियों की याद आई । "सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दुस्ताँ हमारा" में इक़बाल ने भारत के प्राचीन गौरव को अत्यन्त मार्मिक ढंग से उजागर किया था । इन अनुभवों से प्रेरणा पाकर मित्रसेन के अन्दर भारतीय दर्शन और संस्कृति का गहराई से अध्ययन करने की भावना पैदा हुई जिससे कालान्तर में वे नेपाली भाषा में अनेकानेक पौराणिक तथा ऐतिहासिक चरित्रों को साहित्य, रंगमंच या रिकॉर्डिंग के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सके ।

1932 तक देहरादून के ठाकुर चन्दन सिंह द्वारा सम्पादित साप्ताहिक नेपाली पत्रिका 'तरुण गोरखा' में महात्मा गाँधी की आत्मकथा धारावाहिक छपने लगी थी । तिलक के 'गीता-रहस्य' (उर्दू में अनूदित) तथा गाँधी के 'अनासक्ति-योग' (हिन्दी में अनूदित)

पुस्तक या पत्रिका आदि को पढ़कर मित्रसेन ने गीता का अनुवाद नेपाली भाषा में खण्डकाव्य के रूप में करने की प्रेरणा पाई । "शरीर और जान के मोह-भय को त्यागकर अन्यायी या अत्याचारी शासकों के विरूद्ध मुट्ठी कसकर लड़ना ही वीर मनुष्य का धर्म और कर्त्तव्य है "जैसे अमर सन्देश को मधुर कंठ से गा-गाकर नेपाली भाषा-भाषी गोरखाली जनता के बीच पहुँचाने वाले मित्रसेन आज़ाद हिन्द फ़ौज के वीर दुर्गामिल्ल और दलबहादुर थापा के अनुपम बलिदान के समाचार को जानकर अवश्य ही संतुष्ट एवं गौरवान्वित हुए होंगे । कवि द्वारा रचित गीता खण्डकाव्य के कुछ अंशों को उद्धृत करना यहाँ अच्छा होगा –

> क्षत्रिय के लिए युद्ध है महान, धर्मयुद्ध में आगे बढ़ो,
> शत्रु को मारो या धर्म के लिए स्वयं मरो
> आत्मा अमर है, कभी मरती नहीं, यह केवल शरीर बदलती है
> लेकिन माया के भ्रम के कारण मृत जैसे लगती है
> सर्वत्र एक है यह आत्मा, अनेक शरीर में है इसका वास
> फिर मरने पर चिन्ता कैसी, भूखे में क्यों होते उदास ?
> निष्काम कर्म करो जितना हो, है न इसमें कोई पाप
> निष्काम कर्म की महिमा व्यापक, निष्काम भक्ति से छूटे सन्ताप।

स्वतंत्रता-संघर्ष में जहाँ महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सत्य और अहिंसा रूपी अस्त्र-शस्त्रों का खुला प्रयोग हो रहा था वहाँ राष्ट्रप्रेम की भावना से ओतप्रोत क्रान्तिकारी युवाओं के बीच सरदार भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद, लाला हरदयाल, रामप्रसाद बिस्मिल आदि देशभक्त शासक वर्ग में आतंक पैदा करने के उपायों में संलग्न थे । साधन की भिन्नता के बावजूद दोनों का लक्ष्य एक ही था—देश की स्वतंत्रता । मित्रसेन की दृष्टि में शायद हिंसा या अहिंसा के दोनों मार्ग निष्काम तथा निःस्वार्थ होने के कारण उचित ही थे । इसीलिए मित्रसेन के हृदय में महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द

फ़ौज—दोनों के प्रति आस्था, श्रद्धा और विश्वास था ।

आज़ादी प्राप्त कर लेने पर भी यदि समाज का नैतिक या चारित्रिक उत्थान नहीं होता है तो राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता । यह विचार गाँधी जी ने बहुत वर्ष पहले व्यक्त किया था । इसीलिए वे देश के विभिन्न क्षेत्रों में गाँधी-आश्रम की स्थापना कर देशवासियो के बीच नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का प्रचार किया करते थे । वे अहिंसा सत्य, अस्तेय (अलोभ), ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, निर्भीकता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी तथा स्पर्श भावना आदि गुणों का भारतीय समाज में समावेश करना चाहते थे । समाज से छुआछूत, मदिरापान, अन्धविश्वास, अशिक्षा, निर्धनता, आदि दुर्गुणों को हटाने के लिए वे यथाशक्ति प्रयत्न करते थे । गाँधी जी तथा उस काल के अन्य समाज सुधारकों से प्रेरणा पाकर मित्रसेन ने बिना रुके और बिना थके समाज सुधार के क्षेत्र में आमरण सेवा करने का निश्चय कर लिया था । मित्रसेन की लगभग सभी कृतियों में हम जहाँ सत्यनिष्ठा, साहस, वीरता, त्याग और बलिदान का भाव पाते हैं, वहाँ श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, नम्रता और निष्काम सेवा के मानवीय मूल्यों को भी सर्वत्र छाये देख सकते हैं । हास्य शैली में लिखे उनके कुछ 'झ्याउरे' ग़ीतों में जुआ, शराब, फैशन, फिजूलखर्ची तथा नारी के ऊपर किए जा रहे अत्याचार आदि सामाजिक दोषों के विषय मे गहरा व्यंग्य-प्रहार मिलते हैं जिससे मित्रसेन के लिखने और गाने की प्रतिभा के सम्बन्ध में हमें और भी अधिक जानकारी प्राप्त होती है ।

जीवन झाँकी

मित्रसेन का जन्म 29 दिसम्बर 1895 के दिन धाराखोला के समीप भागसू छावनी में हुआ था । भागसू-धर्मशाला कांगड़ा जिला का मुख्यालय है । नवम्बर 1966 में यह ज़िला पंजाब से अलग कर हिमाचल प्रदेश में मिला दिया गया । धर्मशाला (भागसू) की ऊँचाई साढ़े चार से लेकर साढ़े छः हजार फीट तक है । ऊपर पास में ही धौलाधार और हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों के आस-पास चारों ओर मौजूद सतबांज देवदार, केलु, दयार के वृक्ष, गुराँस (नेपाल का राष्ट्रीय फूल) और महल फूल के जंगल तथा बारहों महीने बहने वाले नदी-नाले इसके सौन्दर्य को बहुत ही आकर्षक बनाए हुए हैं । यहाँ भागसू नाथ का प्राचीन शिवमंदिर अवस्थित होने के कारण इस रमणीय क्षेत्र का नाम भागसू धर्मशाला रखा गया है । पौष महीने के शीतकाल में मित्रसेन के जन्म तक प्रकृति यहाँ श्वेत निर्मल बर्फ की वर्षा कर रही थी ।

मित्रसेन के पिता पेन्शनयाफ्ता हवलदार मनवीर सेनथापा थे जो उस समय भागसू छावनी में एम. ई. एस. का ठीकेदार हुआ करते थे । उनकी माता का नाम राधा थापा था । मात्र तीन पुत्रियों के ही पैदा हो जाने के कारण माता-पिता के मन में पुत्र पाने की बलवती लालसा थी । दोनों धार्मिक स्वभाव के थे । पिता दुर्गा और राम की उपासना करते थे तथा माँ की आस्था शंकर और कृष्ण में थी । बहुत पूजा-पाठ तथा तीर्थव्रत करने के बाद अन्त में पुत्र पैदा हुआ । माता-पिता की इस धार्मिक भावना को बालक मित्रसेन ने संस्कार के रूप में सहज ही ग्रहण कर लिया ।

पुत्र को पढ़ाने की उस समय वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी ।

सेना में कार्यरत ऐसे लगभग दस प्रतिशत साधारण पढ़े-लिखे सैनिकों को जो छोटे कल्र्क-सिग्नल या बाजा-बिगुल का काम किया करते थे, पेन्शन पाने के उपरान्त इनमें से कुछ गोरखाली परिवारों को अंग्रेज़ सरकार द्वारा छावनी के अलग-बगल बसाने की परिपाटी थी । लेकिन, प्राथमिक विद्यालय् छावनी से पाँच मील दूर रहने के कारण मित्रसेन ने आठ वर्ष की उम्र में पहली कक्षा में नामांकन कराया । वे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के थे । विद्यालय में नामांकन कराने के बहुत पहले पिता जी ने उन्हें घर में ही वर्णमाला का ज्ञान करा दिया था । मालश्री के साथ-साथ भानुभक्त की रामायण के कुछ श्लोक भी मित्रसेन ने अपने पिता से सीखकर कंठस्थ कर लिये थे । पुत्र द्वारा छन्दों को लय के साथ गा देने पर माता-पिता को अत्यधिक प्रसन्नता होना स्वाभाविक ही था ।

सन् 1905 के भूकम्प में यहाँ बहुत सारे घर ढह गये, बहुत से लोग मर गये, बहुत घायल हुए । दस वर्ष के बालक मित्रसेन् के मन पर प्रकृति-प्रकोप की इस भयंकर दुर्घटना ने गहरा प्रभाव डाला । असार संसार में मानव-जीवन की विवशता का उदाहरण उन्होंने देखा । मित्रसेन का भी घर ढह गया पर किसी की जान नहीं गई । पिता ने वहाँ से दो फर्लांग दूर तोतारानी गाँव में नया घर बनाया । इस समय तक मित्रसेन की तीनों बहनों का विवाह हो गया था । घर में माता-पिता और बालक मित्रसेन के अलावा कोई था नहीं । इसलिए, मित्रसेन का बाल्यकाल बहुत लाड़-प्यार में बीत रहा था ।

उस समय पंजाब में विद्यालयी शिक्षा का माध्यम उर्दू था । पाँचवें वर्ग से उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी भाषाएँ पढ़ाई जाती थी । गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, चित्रकला इत्यादि विषय भी पढ़ने पड़ते थे । उक्त सभी विषयों में मित्रसेन ने अत्यन्त रुचिपूर्वक विद्याग्रहण किया । शहर (धर्मशाला) में किसी प्रकार के भजन-कीर्त्तन, कथा-पुराण, रासलीला या रामलीला इत्यादि के कार्यक्रम होने पर सुनने या देखने के लिए उत्कंठित रहते । पिता ने घर में ही पुत्र को गाना बजाना सिखाने के लिए एक हार्मोनियम

खरीद दिया था । अतः मित्रसेन ने विद्योपार्जन के साथ-साथ गायन एवं संगीत में भी कुछ दक्षता हासिल कर ली ।

अवकाश के दिनों में बालक मित्रसेन को प्रायः वन, पहाड़ या नदी-नाला में अकेले घुमने में अच्छा लगता था । कुंजा का फूल तोड़ने, बुलबुल की बोली सुनने, अइसेलु (एक प्रकार का जंगली फल) खाने, रानीचरी पक्षी के झुडों को देखने में उनको मजा आता था । डल झील के पानी में केलु-दयारा आदि वृक्षों के प्रतिबिम्ब को वे एकटक देखते हुए बैठे रहते थे और कभी भागसू नाथ के पास के निर्मल झरने की स्वर-लहरी में निमग्न रहते थे ।

मुखी माता के दर्शन हेतु जाने में उन्हें बहुत आनन्द आता था । किशोर अवस्था में उन्हें धर्मकोट और तिरूंड की ऊँची चोटी पर जाकर नीचे दूर-दूर तक के प्राकृतिक दृश्यों को देखना अच्छा लगता था । नौ-दस हजार फीट ऊँचे शिखर पर पहुँचकर संसार को देखने-विचारने की प्रेरणा भी उन्हें यहीं से मिली होगी ।

मित्रसेन माँ की तरह बचपन से ही भगवान शंकर में आस्था रखते थे । नदी-नाला से चिकना सुन्दर छोटा पत्थर बटोर कर लाना उनका शौक था । घर के अन्दर पूजा स्थल पर रखकर उन पत्थरों की वे श्रद्धापूर्वक पूजा किया करते थे । पुत्र की ऐसी पवित्र निष्ठा को देखकर तथा माँ के आग्रह से, पिता ने घर के आँगन के किनारे एक छोटा-सा शिव-मंदिर बना दिया था जो आज भी विद्यमान रहकर मित्रसेन की भक्ति भावना की याद ताजा कराता है ।

इस प्रकार के कार्य करते हुए मित्रसेन सोलह वर्ष के हुए । उस समय छोटी उम्र में ही लड़के-लड़की का विवाह कर देने की प्रथा थी । सन् 1911 में मित्रसेन का विवाह हो गया जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ रहे थे । विवाहोपरान्त उन्हें विद्यालय छोड़ने हेतु बाध्य होना पड़ा ।

छावनी के आस-पास निवास करनेवाले प्रत्येक गोरखाली परिवार के सम्बन्ध में सेना के अंग्रेज अधिकारियों को पूरी जानकारी रहती थी । सरकार की नीति थी कि लड़कों को थोड़ा पढ़ा-लिखाकर फौज में भर्त्ती कर लिया जाय । इसलिए मित्रसेन के युवा होने की ख़बर

पाकर कर्नल लाँग ने उनके पिता को सलाह दी कि वे लड़के को फौज में भर्ती करवा दें । इसी के अनुसार सन् 1912 में मित्रसेन पिता तथा दादा की सेना 1/1 गोरखा राइफल्स में सिग्नल में भर्ती हो गए । सन् 1815 में मलाऊन किला (हिमाचल प्रदेश) में अंग्रेजों के साथ भयानक युद्ध हुआ था । युद्ध में गौरखाली सैनिकों की बहादुरी को देखकर अंग्रेजों ने युद्ध के बाद उसी वर्ष (1815 में) सपाटू (शिमला हिल्स) में पहला गोरखा रेजिमेन्ट खड़ा किया । सन् 1861 में इस सेना ने भागसू धर्मशाला में स्थायी जगह पाई । आजादी के बाद सन् 1955 में यानी 94 वर्षों के बाद इसे चौथे गोरखा (रेजिमेन्ट) के साथ मिलाकर यहाँ से स्थानान्तरण कर दिया गया और आजकल 14 गोरखा ट्रेनिंग सेन्टर के नाम से इसका स्थायी पता सपाटू (हिमाचल प्रदेश) हो गया है ।

मित्रसेन की गीत-संगीत सम्बन्धी प्रतिभा को देखकर सभी सरदार और जवान बहुत प्रभावित थे । सेना के उत्सव से लेकर होली-दशहरा तक में मित्रसेन की कला सभी को मंत्रमुग्ध कर देती थी । वे सगीत साधना की ओर ज्यादा समय दे सकें, यह सोचकर उन्हें कवायद और परेड आदि से प्रायः मुक्त रखा जाता था । फौज में रहते हुए उन्होने झ्याउरे, रोदी, सोरठी, भजन, चुडका आदि विभिन्न प्रकार के लोकलयों में तरह-तरह के गीत हार्मोनियम बजा कर गाना सीखा । मारूनी (मगर जाति द्वारा मृदंग के साथ स्त्री-वेश में नाचना) फुर्सुंगे, होली के फाग-नाच जैसे तरह-तरह के लोक नृत्यों में उन्हें खूब मजा आता था । मालश्री गाने के साथ भानुभक्त की रामायण को लय के साथ गाने में वे बहुत प्रवीण थे जिससे उन्हें और भी लोकप्रियता प्राप्त हुई ।

कुशाग्र बुद्धि का होने के कारण उन्हें अपना सिग्नलिंग का काम सीखने में कोई परेशानी नहीं हुई । इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया । सन् 1914 में अपनी पल्टन के साथ फ्रांस के कई मोर्चों में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया । इसके बाद, मित्रसेन की पल्टन को मेसोपोटामिया (मिड्लइस्ट) जाने का आदेश हुआ । वहाँ टर्की की फौज के साथ लगभग तीन वर्ष (1916-18) तक निरन्तर

युद्ध जारी रहा । अन्ततः 1918 में शान्ति-सन्धि की घोषणा के बाद प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हुआ । इस भयंकर युद्ध में अपार जन-धन की हानि हुई । लाखों मनुष्य मारे गए, लाखों घायल हुए । मित्रसेन की पल्टन के सैकड़ों जवान उस चार वर्ष के युद्ध में हताहत हुए । इससे भावुक हृदय मित्रसेन के मन पर गहरी चोट पहुँची । सन् 1920 में विजय-पताका फहराती हुई मित्रसेन की पल्टन भारत वापस आई । लेकिन, इससे मित्रसेन खुश नहीं था । अन्य देश में जाकर लड़ने के बदले अपने देश और समाज की ही कोई ठोस सेवा करना बेहतर जानकर मित्रसेन ने भागसू आते ही मुक्ति (रिलोज) का आदेश ले लिया । उस समय उनकी उम्र पच्चीस वर्ष थी ।

सेना से सेवानिवृत्त होकर घर आने के पहले ही पिता स्वर्गवासी हो गये थे । माँ ने घर में ही आटा-चावल की छोटी दूकान खोल ली थी । पत्नी घर-गृहस्थी का काम काज और बच्चों के साथ गाय-गोशाले की देखभाल करती थी । पिता ठीकेदारी से बहुत धन-सम्पत्ति अर्जित करके गए थे तो भी मित्रसेन ने सन् 1921 में अपने एक मित्र श्रीरंग की सलाह और सहयोग से अपनी पल्टन में भागीदार बनकर कैन्टीन चलाने का काम प्रारंभ किया । मित्रसेन के इस निश्चय को जानकर पल्टन के सभी साहब, सरदार या जवान बहुत प्रसन्न हुए ।

कैन्टीन के लिए सामान खरीदने हेतु मित्रसेन समय-समय पर अमृतसर जाते थे और वहाँ सप्ताह-दस दिन तक रुक जाते थे । इस अवधि में वे शास्त्रीय संगीत का अध्ययन करते थे तथा कभी लाहौर में जाकर अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी जैसे प्रसिद्ध नाटक संस्थान द्वारा प्रस्तुत नाटकों को देखा करते थे । घर वापस आकर वे आधी-आधी रात तक स्थानीय गीत-संगीत की महफ़िल में भाग लेकर आनन्द लेते थे । सबेरे उठकर बाक़ायदा अभ्यास करते थे और दिनभर कैन्टीन का काम देखते थे । उस समय यही उनकी दिनचर्या थी ।

जिस समय मित्रसेन फ्राँस गये थे उस समय उन्हें मात्र दो

सन्तान—एक पुत्र और एक पुत्री थी । सन् 1921 और 1923 में दो पुत्रियाँ और पैदा हुई । सन् 1923-24 में हैजा के कारण कुछ दिन और महीने के अन्तराल पर पत्नी समेत इन सभी सन्तानों की मृत्यु हो गई जिससे मित्रसेन के ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा । 1905 के भूकम्प में ढेर सारे लोगों के मरने तथा घायल होने के दृश्य ने भी मित्रसेन के मन पर गहरा आघात किया था, विश्वयुद्ध के दौरान हज़ारों लाखों मनुष्यों के मरने तथा घायल होने के प्रत्यक्ष अनुभव ने मित्रसेन के मन के अन्दर गहरा घाव पैदा किया था, और ऐसे में पत्नी और सन्तान के इस असामायिक निधन ने भावुक मित्रसेन के हृदय की कैसी हालत कर दी होगी, मात्र कल्पना की जा सकती है ।

बूढ़ी माँ तथा इष्ट मित्र, भाई-बन्धु-सभी ने मित्रसेन को यथासंभव समझाया, सान्त्वना दी । स्वयं मित्रसेन ने भी खुद को संभालने की शक्तिभर चेष्टा की, लेकिन सांसारिक कार्यों से उनका मन फिर गया । इसके बाद, कैन्टीन का कारोबार उसके हिस्सेदार को अकेले चलाना पड़ा । अब मित्रसेन के हाथ में या तो कोई धार्मिक पुस्तक होती थी या हार्मोनियम बाजा । बातचीत या हँसी-मजाक करना उन्होंने एकदम बन्द कर दिया था । वे रामायण, गीता, महाभारत, चण्डीपाठ आदि ग्रन्थों का अध्ययन-मनन करते या रोज़ कई घंटे तक लगातार ध्यान प्राणायाम क्रिया किया करते । साथ ही, वाद्ययंत्र लेकर गाने की साधना भी उसी प्रकार चलती रहती । अब वे एकदम एकसूरहा (एक ही तरफ ध्यान देनेवाला) हो गए थे । उस समय तक अपने गीत-संगीत के अभ्यास में उन्होंने शान्त रस, करूण रस एवं भक्ति रस का बाहुल्य ही लाया । गीता के "निर्ममो निरहंकारस्य स शान्तिमधिगच्छति" मंत्र से प्रेरणा पाकर वे शान्ति-साधना का सतत प्रयास करने लगे । वे तो प्रारंभ से ही विनम्र और अभिमानरहित थे लेकिन मोह-ममता का परित्याग करने में उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा । उनके अन्दर वैराग्य के लक्षण को देखकर माँ परेशान हो गई, साथ ही अन्य सम्बन्धी और हितैषी भी चिन्तित हो गए । सभी को आशंका हुई कि कहीं

वे योगी बनकर भाग ना जाँय । इसलिए, सभी उन्हें दिन-रात घेरकर समझाने-बुझाने का प्रयास करने लगे । लेकिन, मित्रसेन ने उस समय तक अपने भावी जीवन की रूपरेखा तैयार कर ली थी । सभी इष्ट मित्रों की सलाह से और खासकर माँ के बार-बार आग्रह करने के कारण वे दूसरा विवाह करने को राजी हो गए । तत्पश्चात् सन् 1925 में सल्लाधारी गाँव की कन्या लाजवन्ती थापा के साथ उनका विवाह हुआ जो आज ठीक अस्सी वर्ष की हो गई हैं ।

विवाह के कुछ महीने बाद मित्रसेन ने अपनी भावी योजना के अनुसार सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया । भागसू के इतिहास में सबसे पहले सन् 1926 में हिमालयन थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना करके मित्रसेन ने बहुत ख्याति अर्जित की और 'दुनिया झुकती है, झुकानेवाला चाहिए' जैसी प्रिय उक्ति को उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया ।

उस समय पंजाब में उर्दू और हिन्दुस्तानी भाषा का ही विशेष प्रचलन था । अतएव, मित्रसेन ने भी अपना पहला नाटक 'बिल्वमंगल' (सूरदास) हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा में तैयार किया । माँ के श्रीकृष्ण के प्रति आस्था से प्रेरित होकर उन्होंने कृष्णभक्त के जीवन-चरित्र से ही रंगमंच कला प्रदर्शन का शुभारंभ किया । "यह ले अपनी लकुटि कमरिया, बहुतहि नाच नचायो, सूरदास तब विहँसि यसोदा लै उर कंठ लगायो । मैया मोरी मै नहीं माखन खायो ।" सूरदास के साहित्य में भगवान कृष्ण की बाललीला का अनूठा वर्णन पढ़कर मित्रसेन बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने बहुत मन लगाकर इस नाटक को तैयार किया । लगभग तीन घंटे तक चलने वाले इस नाटक के निर्माता, संवाद-लेखक, धुन रचयिता, निर्देशक, संगीत और नृत्य निर्देशक, प्रमुख अभिनेता और गायक, सभी अकेले वे स्वयं थे । नाटक हर जगह 'हिट' हुआ । तभी से मित्रसेन 'मास्टर मित्रसेन' के नाम से विख्यात हो गए ।

उक्त नाटक की सफलता के बाद मित्रसेन ने पंजाब में प्रचलित लोक कथा के आधार पर हीर-रांझा तथा सोहनी-महिवाल जैसे दुखान्त नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत किया । यद्यपि इन नाटकों

में प्रायः उर्दू भाषा का प्रयोग किया गया था लेकिन बीच-बीच में उनके द्वारा पंजाबी लोकगीत या लोकनृत्य के दृश्यों का समावेश कर देने से दर्शकों को बहुत अच्छा लगता था । उनकी नाटक कम्पनी में गोरखाली, पहाड़ी या पंजाबी लगभग पच्चीस कलाकार तथा सात-आठ कर्मचारी थे । मास्टर जी के व्यवहार ने सभी सदस्यों को संगठित कर दिया था । दो-तीन वर्ष की अवधि में उन्होंने उक्त नाटकों के अतिरिक्त दर्दे जिगर, नूर की पुतली, मशरकी हूर तथा बादशाह टावर आदि नाटकों को उर्दू भाषा में प्रदर्शित किया । यद्यपि उनके द्वारा खेले गए सभी नाटकों में हास्य दृश्य प्रचुर मात्रा में पाए जाते थे लेकिन 'बादशाह टावर' प्रारंभ से अन्त तक हास्य व्यंग्य से परिपूर्ण था । भागसू छावनी के साथ-साथ धर्मशाला, पालमपुर, कांगड़ा, शाहपुर, कोटला, नूरपुर, पठानकोट, गुरदासपुर, बटाला आदि शहरों में हर जगह उक्त नाटकों का खेल-प्रदर्शन कई सप्ताह तक लगातार चलता था । इस अवधि में मास्टर मित्रसेन की प्रसिद्धि पूरे पंजाब मे सर्वत्र फैल गई । तब तक भारत में सिनेमा प्रारंभ नहीं हुआ था । मात्र ख्यातिलब्ध नाटक कम्पनी बड़े-बड़े शहरों में खेल दिखाया करती थी । इसलिए, छोटे-छोटे शहर-कस्बे में मित्रसेन की नाटक-प्रदर्शन-सेवा यहाँ उल्लेखनीय है ।

अनेकानेक कहानी पुस्तकों के सहारे उर्दू-हिन्दुस्तानी भाषा में संवाद लिखने, गीत रचने तथा धुन बनाने का अभ्यास मित्रसेन ने इसी बीच किया । रंगमंच पर गाते समय उनकी मधुर तेज़ भर्राई आवाज श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देती थी । उस समय तक पंजाब में बहुत बड़ी जन-जागृति आ गई थी । राजनीतिक, धार्मिक या सामाजिक संस्थायें-सभी सक्रिय थीं । इसलिए, मित्रसेन जैसे प्रतिभावान कलाकार की सेवा प्राप्त करने की हर संस्था की लालसा स्वाभाविक ही थी । इसलिए, सन् 1928 में सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा के पंजाब के संचालक ने मित्रसेन को लाहौर से आदरपूर्वक आमंत्रित किया । उन्होंने बहुत गंभीरतापूर्वक इस प्रस्ताव पर विचार किया और उसके बाद धर्म-प्रचारक के रूप में कुछ समय तक कार्य

करने की सहमति व्यक्त की । लगभग चार वर्षों तक उन्होंने पूरे पंजाब में घूम-घूमकर गीत-संगीत तथा कथा-व्याख्यान के माध्यम से धर्म-प्रचार के कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया । इस बीच उन्होंने उर्दू हिन्दी या संस्कृत भाषा में लिखी अनेकानेक पुस्तकों या धर्मग्रन्थों को पढ़ा, साथ ही देश-विदेश के प्रख्यात साहित्यकारों की अनुवादित कृतियों का भी गहराई से अध्ययन किया । देश के कतिपय विख्यात धार्मिक या सामाजिक विद्वान् कार्यकर्त्ताओ के साथ नजदीकी सम्पर्क के कारण उनके व्यक्तित्व में और भी निखार आ गया । दैनिक या सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा उन्हें देश की राजनीतिक गतिविधि के साथ-साथ राजनीतिक नेताओं के विचार सुनने का अवसर प्राप्त हुआ।

शास्त्रीय संगीत की वास्तविक जानकारी होने के कारण मित्रसेन का भजन-संकीर्त्तन कार्यक्रम मनभावन होता था । कथा-व्याख्यान में वे महाभारत के प्रसंगों के साथ-साथ गीता के उपदेशों को भी बोलकर या गाकर सुनाया करते थे । उस समय, स्वतंत्रता के संघर्ष-मय परिवेश में जनजागृति के सन्दर्भ में यही विषय उपयुक्त था । महाभारत में मित्रसेन राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक सामग्रियों को प्रचुर मात्रा में मिला सके थे । इन सामग्रियों का उपयोग बाद में उन्होंने नेपाली भाषा संस्कृति को सजाने-सँवारने में किया । सन् 1928 से 1931 तक लगातार घुम-घुमकर धर्म-प्रचार का कार्य करते रहने से मित्रसेन अस्वस्थ हो गए और दिन-व-दिन उनका शरीर सूखता चला गया ।

इस समय लाला लाजपतराय के ऊपर अंग्रेज द्वारा लाठी-प्रहार, महात्मा गाँधी का नमक सत्याग्रह आन्दोलन तथा सरदार भगतसिंह को फाँसी पर लटकाने की घटना ने भावुक मित्रसेन को बहुत विचलित कर दिया । उधर ठाकुर चन्दनसिंह की पत्रिका ने भी उनके मन में बहुत हलचल पैदा कर दी थी । फिर, भ्रमण काल में उन्हें कुछ अबोध निर्धन गोरखाली युवतियों को पंजाब में लाकर बेच देने की जानकारी मिली । इसके बाद आमरण अपने समाज की सेवा करने का निश्चय करके उन्होंने सन् 1932 में सनातन

धर्मसभा के समक्ष अपना त्यागपत्र प्रस्तुत कर दिया ।

भागसू में वापस आने पर मित्रसेन शीघ्र रोगमुक्त हो गए । लेकिन स्थानीय कलाकार और नाटक प्रेमी दर्शकों के स्नेहपूर्ण आग्रह की उपेक्षा न कर सकने का कारण, उन्होंने एक वर्ष के अन्दर ही हिन्दुस्तानी भाषा मे तीन नाटको को तैयार कर दिखाया । पहला नाटक "वीर अभिमन्यु" मे बहादुर युवा अभिमन्यु के पराक्रम और बलिदान की तथा अंग्रेज जैसे शक्तिशाली कौरव दल के छल-कपट एवं अत्याचार की कथा थी । इस कथा को रंगमच पर दिखाने का मित्रसेन का उद्‌देश्य यह था कि इससे विशेषतया देश के युवा वर्ग की छाती में अन्याय या अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष कर सकने की भावना का संचार होगा । दूसरा नाटक "परिवर्त्तन" में भी देश और समाज के लिए तन-मन-धन अर्पण कर देने का निश्चय अथवा हृदय-परिवर्त्तन की अभिव्यक्ति थी । तीसरा नाटक "यहूदी की बेटी" मे एक युवती की सूझबूझ और साहस का अनूठा दृश्य दिखाया गया था ।

1926-32 की अवधि में मित्रसेन की एकमात्र सन्तान दिग्विजय सेन थापा का जन्म सन् 1926 में हुआ । अन्य घटनाओं में सन् 1926 मे ही देहरादून के युवा खड्गबहादुर सिंह बिष्ट की अद्वितीय पराक्रम के बाद जेल से मुक्ति, साबरमती आश्रम मे गाँधी जी द्वारा उनका प्रशिक्षण, दंडीयात्रा में शामिल होना, देहरादून छावनी में अपने युवा सहयोगियो के साथ देशप्रेम या आजादी के सदेश को फैलाने हेतु साहसिक प्रचार कार्य करना तथा लापता होना, साथ ही ठाकुर चन्दन सिह द्वारा सम्पादित और देहरादून से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका अर्थात् नेपाली भाषा में "गोरखा संसार" और "तरुण गोरखा" तथा अंग्रेजी भाषा में "दि हिमालयन टाईम्स" यहाँ उल्लेखनीय हैं । मित्रसेन ने जहाँ युवा खड्गबहादुर बिष्ट के साहस, पराक्रम तथा देशभक्ति की भावना से बहुत प्रेरणा पाई, वहाँ ठाकुर चन्दन सिंह की उक्त पत्रिकाओं से नेपाली भाषा तथा भारतीय संस्कृति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्राप्त किया ।

जीवन के अन्तिम भाग (1933-46) में मित्रसेन तेरह वर्षों तक

निरन्तर साहित्य सृजन के साथ-साथ धर्म प्रचार, समाजसेवा और देशसेवा के कार्यों में रत रहे । भारत मे उस समय अंग्रेज अधिकारी देश के अधिकांश धनी और स्वार्थी तत्वों को साथ लेकर यहाँ की निर्धन, अशिक्षित एवं कमजोर जनता पर घोर अन्याय और अत्याचार कर रहे थे, मित्रसेन के सामने यह बात स्पष्ट थी । नेपाल में भी अंग्रेजो के संरक्षण में वहाँ के निरंकुश राणा-परिवार का आदेशात्मक शासन गरीब प्रजा पर जोर-जुल्म करते हुए किस प्रकार निर्दयतापूर्त्रक शोषण कर रहा था, यह दृश्य उन्होंने अपने भ्रमण काल (1933-35) में प्रत्यक्ष देखा था । शिक्षा के नितान्त अभाव के कारण और निर्धनता की चक्की में लगातार पीसे जाने के कारण वहाँ मित्रसेन ने जनजागरण की नितान्त आवश्यकता महसूस की । लेकिन, नेपाल के अन्दर उस समय अत्यन्त कड़ा शासन-प्रबन्ध होने के कारण उन्हें वहाँ किसी प्रकार के प्रचार-कार्य को प्रारंभ करना मुश्किल लगा । तानसिंग, रिड़ि, पाल्पा, गुलमी, पोखरा, बागलुंग, लमजुंग, गोरखा, नवाकोट इत्यादि स्थानों में लगभग ड़ेढ वर्षों तक भ्रमण कर मित्रसेन वहाँ के जनजीवन तथा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्था के बारे में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सके । विशेषतः पहाखण्ड में प्रचलित अनेकानेक, लीकगीत, लोकनृत्य, पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज आदि सांस्कृतिक तथ्य और सामग्रियों को वे प्रचुर मात्रा में एकत्रित कर सके और अपने रसीले भजन तथा गीत-संगीत से वहाँ के लोगों को मोहित किया । नेपाली भाषा में गीत-भजन आदि रचने की प्रेरणा भी उन्हें इसी भ्रमण के दौरान मिली ।

उक्त लम्बे भ्रमण काल (1933-35) में मित्रसेन ने केवल नेपाल के अन्दर ही नहीं, बल्कि भारत के विभिन्न स्थानों में बिखर कर बसे गोरखाली समुदाय के साथ सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से शिलांग, देहरादून, कुइटा, एबोटाबाद, बकलोह धारीवाल, बनारस, कलकत्ता, दार्जिलिंग, गोरखपुर, नौतुहा आदि स्थानों का भ्रमण किया । नेपाली भाषा में सरल और मजेदार गीत-भजन आदि सुना पाने के कारण खासकर गोरखाली सेना के सैनिकों में और सेना के आसपास बसे गोरखाली सेवानिवृत व्यक्तियों के परिवारों में मित्रसेन

की कला-प्रतिभा की काफी धाक जम गई । बार-बार आने के आग्रह को सुनकर मित्रसेन के मन में अनूठे प्रकार के स्नेह, आनन्द, आत्मविश्वास और आत्मस्फूर्ति का संचार होना स्वाभाविक ही था ।

ढाई वर्ष का भ्रमण समाप्त करके जुलाई सन् 1935 में घर वापस आने पर मित्रसेन अपने दीन-हीन समाज की सोचनीय अवस्था एवं गोरखाली सन्तान के भविष्य की चिन्ता में बहुत दिनों तक सोच में पड़कर बैठे रहे । समाज में किसी प्रकार की सामाजिक-राजनीतिक चेतना नहीं है-शराब-दारू, जुवा आदि की आदत में पड़कर समाज का दिन-ब-दिन खोखला होना उन्होंने अनुभव किया । अशिक्षा और अज्ञान के कारण समाज में अन्धविश्वास बढ़ रहा है, बाल विवाह, बहुविवाह एवं बेमेल विवाह ने नारी वर्ग के हित को बहुत धक्का पहुँचाया है । उस पर वेश्यावृत्ति तक का लांछन लग गया है, अधिकांश बालक विद्यालय से भागकर, कहीं छिपकर गुलेल खेलते, मछली मारते और ताश आदि खेलते हैं । केवल भजन-गीत सुनाने से तो समाज में जागृति आयेगी नहीं । जब मित्रसेन इसी सोच विचार में पड़े थे, उसी समय अगस्त 1935 में उनके मित्र सूबेदार-मेजर बहादुर सिंह बराल गोरखा रायफल्स से रिटायर होकर घर (दाढ़ी गाँव-भागसू) वापस आए । इसके बाद दोनों ने मिलकर समाज-सुधार का काम करने का विचार किया । बराल जी भी सेना में रहते हुए नेपाली भाषा में कुछ भजन-गीत आदि-रचने में रुचि रखते थे । उन्होंने अपनी रचनाओं के साथ-साथ मास्टर मित्रसेन, दुर्गामिल्ल आदि तथा कुछ स्थानीय कवियों की कृतियों को "बराल के आँसू" नामक पुस्तिका में छापा था । मित्रसेन द्वारा बराल के आँसू में संग्रहित रचनाओं को सुर-ताल प्रदान कर हार्मोनियम बजाकर गा देने से सोने में सुगन्ध डाल देने की बात सर्वविदित है ।

लेकिन, मित्रसेन को मात्र छोटे-छोटे भजन-गीत आदि सुनाने में संतोष नहीं था । वे चाहते थे कि वे कुछ ऐसा सन्देश समाज को सुना सके जैसा सौ वर्ष पहले आचार्य भानुभक्त ने सरल-मीठी भाषा में रामायण लिखकर जन-जन को सुनाया था । अतः मित्रसेन

ने भारत और नेपाल की तत्कालीन राजनीतिक अवस्था और सामाजिक परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए गीता के संदेश और महाभारत के रोचक प्रसंगों को सरल नेपाली भाषा में खण्डकाव्य के रूप में सन् 1935 से लिखना प्रारंभ किया। काव्य लिखते समय उन्होने गेय भाषा-शैली का प्रयोग किया। मात्र इतना ही नहीं, मित्रसेन द्वारा ही लोकप्रिय झ्याउरे लय मे हास्य रस की व्यग्यात्मक कृतियो का प्रारंभ भी इसी समय हुआ। फिर उनके द्वारा उक्त काल में नेपाली भाषा में 'कृष्ण-जन्म' नाटक लिखकर प्रदर्शित करना भी उल्लेखनीय है।

उक्त लम्बे भ्रमण-काल मे मित्रसेन ने दार्जिलिंग के विख्यात साहित्यकारों में सूर्य विक्रम ज्ञवाली, धरणीधर शर्मा तथा पारसमणि प्रधान से अत्यधिक उत्साह और प्रेरणा प्राप्त की। इस भ्रमण काल में उन्हें नेपाली भाषा के अन्य तीन व्यक्ति दिग्गज कवि शिरोमणि लेखनाथ पौड्याल, महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा और प्रख्यात नाटककार बालकृष्ण सम की साहित्यिक गतिविधि के विषय में पता चला। इन साहित्यिक बन्धुओं के साथ भेंटवार्ता करने की आकांक्षा मित्रसेन के मन में थी। अतः सन् 1936 मे महाशिव रात्रि के पर्व के अवसर पर पशुपतिनाथ का दर्शन करने के साथ-साथ उक्त बन्धुओं से मिलने की अभिलाषा में वे काठमांडू गये। भागसू तरफ के रायसाहब सेनवीर गुरूंग, सूबेदार नारायणसिंह थापा और हवलदार हरिश्चन्द्र साही उस समय वहाँ थे। उन लोगों ने मास्टर मित्रसेन का खूब सेवा-सत्कार किया तथा उनके रहने-खाने की समुचित व्यवस्था कर दी। पशुपतिनाथ के दर्शन के बाद मित्रसेन ने तुरंत उक्त साहित्यिक बन्धुओं से भेंटवार्ता की। प्रत्येक से यथेष्ट रूप में प्यार और प्रोत्साहन पाकर मित्रसेन ने उन लोगों के परामर्श और सहायता से वहाँ भजन-गीत आदि का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। संगीत प्रेमी श्रोताओं की खुशी का ठिकाना न रहा। माँग बढ़ती गई। जगह-जगह से उन लोगों ने बुलवा भेजा। काठमाण्डू, भक्तपुर और ललितपुर में लगभग तीन महीने तक निरन्तर गीत-संगीत का कार्यक्रम चला—यहाँ तक कि बड़े-बड़े घरों से भी उन्हें आमंत्रित

किया गया । प्रशस्त मात्रा में मान-प्रतिष्ठा के साथ-साथ धन और पदक हासिल करके जून महीने में मित्रसेन घर वापस आए । विदाई की मुलाकात में महाकवि देवकोटा ने विशेषतया उनके झ्याउरे लय वाले गीतों की अधिक प्रशंसा की, कवि शिरोमणि लेखनाथ ने उनके भजन के साथ-साथ गीता या महाभारत जैसे खण्डकाव्य की खूब प्रशंसा की तथा नाटककार बालकृष्ण ने उनकी नाट्यकला प्रतिभा के प्रति बहुत सन्तोष और खुशी जाहिर की । इन साहित्यिक बन्धुओ के हार्दिक स्नेह, सहयोग या परामर्श को मित्रसेन ने आखिरी साँस तक सँजोकर रखा ।

भागसू वापस आते ही मित्रसेन उक्त कवियो की सलाह के अनुसार ग्रामोफ़ोन रिकॉर्डिंग के लिए सामग्री एकत्र करने तथा चयन करने के काम में लग गए और इसी उद्देश्य से सगीत-गीत का अभ्यास करने लगे । दशहरा-दीपावली बीत जाने पर उसी वर्ष (1936 में) बनारस जाकर मित्रसेन ने सर्वप्रथम दो गीतों की रिकर्डिंग करवाई—'अब त जाऊँ कान्छी घर, बौटा छ उकाली-ओह्राली' तथा दूसरा 'कृष्णा-गोपी जस्तो होरी, आईजाऊ खेल्नुलाई गोरी ।' (हे लड़की, अब घर जाओ, रास्ता चढ़ाव-उतार का है । तथा हे गोरी कृष्ण और गोपी की तरह होली खेलने आया जाया करो)

इसके बाद 1945 तक उन्होंने भजन-गीत या नाटक के अनेकानेक ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड बनारस, कलकत्ता, दिल्ली और लाहौर से तैयार कराये । इस कार्य से मित्रसेन का नाम गोरखाली जगत में सभी जगह फैल गया । यहाँ तक कि कलकत्ता की फिल्म कम्पनियों ने भी उन्हें फिल्मी काम में आकर्षित करने की कोशिश की । लाहौर से भी उन्हें सनातन-धर्म सभा वाले ने फिर से मनाने का प्रत्यन किया था । लेकिन, मित्रसेन के मन में स्वतंत्रतापूर्वक काम करते हुए अपने समाज में जागृति फैलाने की बड़ी लालसा थी । अतः, वे बिना दाँया-बाँया कहीं देखे, सीधे जनजागरण के मार्ग पर बढ़ते रहे ।

ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड बन जाने पर मित्रसेन को जगह-जगह से आमंत्रित किया जाने लगा । साल में लगभग चार महीना घर पर

बैठकर वे प्रचार सामग्री को लिखकर तैयार करते, लय-सुर और ताल डालकर अभ्यास करते और आठ महीना के लगभग सेना-सेना में या सेना की छावनी के बगल में बसे गोरखाली समाज में घूम-घूमकर गीत संगीत, तथा-व्याख्यान या नाटक प्रदर्शन के माध्यम से धर्म-प्रचार या जन-जागृति का कार्य करते । उस समय तक सरकार की ओर से धर्म प्रचार और समाज सेवा के कार्यों में किसी प्रकार की रोक नहीं थी । तो भी मित्रसेन के द्वारा अत्यन्त सावधानीपूर्वक काम करना उचित ही था ।

नाटक का पर्दा आदि तैयार करने के काम में मित्रसेन को प्रसिद्ध चित्रकार सेनावीर ठाकुरी का बहुत सहयोग मिला । सेनावीर हास्य दृश्य के एक लोकप्रिय कलाकार भी थे । तबला-मादल (एक बाजा) बजाने में और नाटक की प्रमुख भूमिका पूर्ण करने में दिलीप सिंह गुरूंग उनकी सहायता करते थे । कभी उक्त कलाकार को फुरसत न रहने पर स्वयं मित्रसेन पर्दा बनाते थे और स्थानीय कलाकारों को उचित मार्ग-निर्देश देकर अन्य सभी काम सुचारु रूप से सम्पन्न करा लेते थे । मित्रसेन जिस तरह नाटक-प्रदर्शन कला में निपुण थे उसी तरह धर्म-उपदेशक के रूप में भी एकदम प्रवीण और सफल थे । लगातार एक-एक महीना तक रोज़ चलनेवाले महाभारत और पुराण आदि के व्याख्यान कथा-कार्यक्रम में मित्रसेन इस प्रकार मोहिनी पैदा कर देते थे कि श्रोताओं की उपस्थिति दिन-ब-दिन बढ़ती जाती थी । कथा के बीच-बीच में वे हमारे पूर्वजों के अनुपम साहस और बलिदान से ओतप्रोत अनेकानेक ऐतिहासिक घटनाओं की झाँकी भी अनूठे ढंग से प्रस्तुत करते थे । प्रतिदिन दो-ढाई घंटे तक चलनेवाले कथा-व्याख्यान के बाद मित्रसेन द्वारा गाये गए एक-दो भजन और झ्याउरे गीत श्रोताओं को भरपूर आनन्द और सन्तुष्टि देते थे । सन् 1935 से 1939 तक, चार वर्ष की अवधि में मित्रसेन ने भाषा-साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र मे प्रशस्त सेवा की ।

भारतीय सेना के गोरखाली पल्टनों में पूर्व-पश्चिम दोनों तरफ के भारतवासी तथा नेपालवासी गोरखाली सैनिक होते थे और आज भी ऐसी ही व्यवस्था है । इन सैनिकों में देश की आज़ादी के लिए

जागृति पैदा करने के जिस प्रयास का प्रारंभ सन् 1932-33 तक छावनी में वीर युवा खड्बहादुर सिंह विष्ट ने किया, उसी कार्य को सावधानी के साथ मित्रसेन करते रहे । युवा वर्ग को गीता का सन्देश सुनाकर, अभिमन्यु नाटक खेलकर, लक्ष्मण-परशुराम संवाद लिखकर मित्रसेन ने उनके समक्ष अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध सत्याग्रह का एवं साहस, वीरता और बलिदान का उदाहरण प्रस्तुत किया । शासक कैसा होना चाहिए—इस बात को उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र और श्रीकृष्ण के चरित्र-चित्रण के द्वारा उपस्थित किया । नारी-वर्ग को जाग्रत करने के लिए मित्रसेन ने सती सावित्री, सती पार्वती, सती द्रौपदी, सन्त सुखुबाई आदि के दृष्टान्त लिखे । मलाऊन और खलंगा के युद्ध में अंग्रेजों की शक्तिशाली फौज के साथ मुट्ठी कसकर लड़नेवाले अमर सिंह थापा, भक्ति थापा, बलभद्र कुंवर या उनके हजारों गोरखाली वीर सैनिकों के साथ-साथ सैकड़ों बहादुर नारी और बालकों की वीरता की गाथा सुनकर जन-जन के मन के अन्दर जोश और उत्साह उत्पन्न कर देने का मित्रसेन का प्रयास व्यर्थ नहीं गया । इस बात का साक्षी शहीद दुर्गामिल्ल और शहीद दलबहादुर थापा का बलिदान है तथा अन्य अनेकानेक देशभक्त सार्थी लोगों की साहस, वीरता, त्याग-भावना है ।

दुर्भाग्यवश, द्वितीय विश्वयुद्ध सन् 1939 में आरंभ हुआ । मित्रसेन देश की आजादी के लिए संघर्ष को उचित समझते थे लेकिन विश्वयुद्ध के बदले वे विश्वशान्ति के पक्षधर थे । प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उन्हें लड़ाई के भयंकर विनाशकारी परिणाम का प्रत्यक्ष अनुभव था । 1939 तक, निरन्तर छः वर्षो तक प्रचार-कार्य में लगे रहने से मित्रसेन का शरीर जर्जर हो गया था । इसलिए, 1940 से वे ज्वर-ग्रस्त हो गए । लगभग चार वर्षों तक घर में बैठकर वे अपना उपचार कराते रहे । बीच-बीच में ज्वर के हट जाने पर वे साहित्य-सृजन करते थे या महात्मा बुद्ध और टाल्सटाय की रचना का अध्ययन करते थे । इसी समय उन्होंने बुद्धवाणी का अनुवाद नेपाली भाषा में किया, साथ ही टाल्सटाय की चार-पाँच कहानियों को गद्य-पद्य दोनों विधाओं में तैयार किया ।

सन् 1944 में ज्वर ने मित्रसेन को छोड़ दिया । 13 जुलाई 1944 (भानु-जयन्ती) के दिन मित्रसेन के विशेष आग्रह पर भागसू 'सत्संग प्रचारिणी-सभा' का गठन किया गया । उनके सहयोगियों मे कैप्टन बहादुर सिंह बराल, मास्टर नत्थू बोग्टी, बी. ए., बी. टी., सूबेदार गिरधारी बिष्ट, जमादार राम किशन थापा, जमादार प्रहलाद गुरूंग तथा थानेदार दुर्गा सिंह भण्डारी आदि का नाम स्मरणीय है । अगस्त 1944 में मित्रसेन प्रचार कार्य के सिलसिले में नौतुना-गोरखपुर गए । इसी भ्रमण-काल में वे रिड़ि, तानसिंग, पाल्पा शिलांग और तेजपुर आदि स्थानो पर पहुँचने का सौभाग्य पा सके । उक्त स्थानों में वे साप्ताहिक सत्संग का कार्यक्रम चलाकर, नाटक तैयार एवं प्रदर्शित कर, भजन गीतादि सुनाकर और कथा-व्याख्यान का आयोजन कर भाषा-संस्कृति की सेवा और प्रचार करते रहे । इसीकाल में किसी साहित्य-सृजन के काम से दिल्ली और लाहौर जाकर-ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड तैयार करने का काम भी किया । दिसम्बर 1945 में जब उन्होंने पचास वर्ष की उम्र पूरी की, वे नौतुना में थे । जनवरी 1946 से वे वहाँ बहुत बीमार हो गए । दवाई से भी कोई लाभ नहीं हुआ । अतः मार्च के अन्तिम सप्ताह में वे जन्म स्थान भागसू वापस आ गए । कुछ दिन बाद 6 अप्रैल 1946, रामनवमी के दिन मित्रसेन ने प्राण-त्यागकर दिया । मरते समय पुत्र दिग्विजय-सेन को उन्होंने आखिरी परामर्श दिया –

> "तुम बीस वर्ष के हो गए हो । दादी और माँ की सेवा करना और जहाँ तक संभव हो, सत्संग कार्य को चलाते रहना ।"

गीता

गीता को गाकर सुना सकने तथा समझा सकने के रूप में लाने उद्देश्य से मित्रसेन ने लघु रूप में (लगभग पाँच सौ पंक्तियों में) इसका अनुवाद सरल नेपाली भाषा मे खण्डकाव्य के रूप में सन् 1935 में किया । उस काल में यूरोप में दूसरे विश्वयुद्ध की तैयारी जोर-शोर से हो रही थी और भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चरम सीमा पर पहुँच गया था । सघर्ष के उस कोलाहलपूर्ण वेला मे गीता को लिखते समय कवि ने मात्र इसका अक्षरशः अनुवाद नहीं किया बल्कि परिस्थिति के अनुसार इसमे कुछ जोड़ने में भी संकोच नहीं किया । मित्रसेन को प्रथम विश्वयुद्ध के प्रलयंकर परिणाम का प्रत्यक्ष अनुभव था। इसलिए, वे विश्व शान्ति के पक्ष में थे । राज्य की आपसी हिंसात्मक लड़ाई से संसार निश्चय ही नष्ट हो जाएगा, ऐसा डर और आशंका उन्हें थी । इस प्रकार के विनाशकारी युद्ध के मूल में लोभ, ईर्ष्या, भय, घृणा, अहंकार इत्यादि दुष्प्रवृत्ति का विशेष दखल होता है, यह बात वे जान चुके थे । कवि के शब्दो में—

राज्य सुख भोग हेतु व्यर्थ में युद्ध रचनाओगे क्यों
मेरा मन नहीं मानता, हे कृष्ण संसार को डूबाओगे क्यों
संसार को देकर कष्ट, ग़रीब का चूसकर रक्त
करके जनसमूह को नष्ट, मौज़ उड़ाओगे क्यों ?

'ग़रीब का रक्त चूसकर, मौज उड़ाओगे क्यों' गीता के मूल-ग्रन्थ में शायद ऐसा कहीं लिखा हुआ नहीं है लेकिन प्रेमचन्द-टाल्सटाय-गाँधीजी आदि के साहित्य से प्रभावित होकर कवि ने अर्जुन के मुख से ऐसा प्रश्न कृष्ण के सामने रखा । महात्मा गाँधी ने 'असंग्रह' निबन्ध में लिखा है—"शरीर को जितना चाहिए, उतनी आवश्यक वस्तु के

अलावा जो मनुष्य अन्धाधुन्ध धन-सम्पत्ति संग्रह कर लेता है, वह समाज और राष्ट्र का चोर है । ऐसे लोगों को चोर की सज़ा मिलनी चाहिए । गाँधी, टाल्सटाय और प्रेमचन्द के समान मित्रसेन भी शोषण के एकदम विरुद्ध थे, वे दलित-वर्ग के हितैषी थे, वे वास्तव में जनकवि थे ।

विशेषतया लोभ से दुनिया में शोषण, लूट पाट, हिंसा, रक्तपात और अशान्ति का सूत्रपात होता है । विश्वशान्ति, मानव-धर्म वसुधैव कुटुम्बकम् इत्यादि सिद्धान्त यथेष्ट रूप में प्रयोग में आते नहीं हैं । लोभ के कारण मनुष्य हिंसक पशु से भी नीचे गिर जाता है । इसी सन्दर्भ में कवि ने लिखा है—

लोभ ने सबको अन्धा बना दिया, लोभ ने अन्धा बनाया
धर्म का चिन्ह लुप्त हुआ संसार से, धर्म का चिन्ह लुप्त हुआ
बहती है कहीं रक्त की धारा, छोड़ता है मनुष्य यह काया
होगा क्या-क्या आगे अब, हिंसक पशु-सा बनाया

लोभ, ईर्ष्या और अभिमान के घमंड से माते हुए इन साम्राज्यवादी शक्तिशाली राष्ट्रों को आपस में लड़ते हुए देखकर, विश्वयुद्ध के भयकर परिणाम के विषय में सोचकर संवेदनशील कवि द्वारा चिंता और दुख व्यक्त करना स्वाभाविक ही है ।

विश्वशान्ति प्रबल इच्छा होने के बावजूद, मित्रसेन भारत को शीघ्रातिशीध्र स्वतंत्र होता देखना चाहते थे । सघर्ष, कष्टसहन और बलिदान के अलावा लक्ष्यप्राप्ति का कोई और रास्ता नही था । जान का मोह त्यागकर स्वतंत्रता-आन्दोलन का ग्रास बननेवाले युवकों की देश में कमी थी । ऐसे निर्मोही और निर्भीक सत्याग्रही एव क्रान्तिकारी की खोजकर सघर्ष के लिए तैयार करने के प्रयास में देशभक्त नेतालोग दिन-रात लगे हुए थे । उसी समय, मित्रसेन द्वारा गीत-सगीत के माध्यम से समाज में गीता का प्रचार-कार्य आरंभ करना वस्तुतः सराहनीय बात है । आत्मा अजर-अमर है, अविनाशी है लेकिन शरीर नश्वर है, क्षणभंगुर है—अतः अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाना, संघर्ष करना और न्याय के लिए बलिदान हो जाना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है । जन्म के उपरान्त एक न एक दिन

तो निश्चित रूप से मरना है लेकिन आत्मा कभी मरती नहीं । कवि की कृति से—

जैसे पुराना वस्त्र बदलकर, ढँकते हैं नये वस्त्र से शरीर
वैसे ही चोला बदलकर करते है धारण दूसरा शरीर
आत्मा अविनाशी है अर्जुन, शस्त्र इसे काट नहीं सकता
न आत्मा जलती है, न इसे सुखा या भिंगा कोई सकता ।

हम अविनाशी आत्मा हैं, नाशवान शरीर नहीं हैं । पुराना शरीर छोड़ने के साथ ही आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है । परम्परागत रूप से चले आ रहे इस प्रकार के विचार-विश्वास के कारण और दृढ़ आस्था के कारण भारतीय दर्शन-संस्कृति को संसार भर में सर्वश्रेष्ठ कहा गया हैं । इसमें निराशावादी या पलायनवादी विचार की ध्वनि नहीं है बल्कि इसमें पूर्णरुपेण आशावादिता एव प्रत्येक चुनौती को निर्भीकतापूर्वक सामना करने का संकल्प, साहस और वीरता का भाव विद्यमान है । स्वयं के साथ-साथ अन्य सभी को केवल आत्मा समझकर कार्य करने वाले व्यक्ति के मन में भय-डर, मोह-ममता तथा मान-अभिमान का ज़रा भी अंश नहीं रहता और मात्र ऐसा मनुष्य ही अन्याय का सामना, निष्काम सेवा कार्य ओर देश, समाज या विश्वभर में शाश्वत शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर सकता है ।

अर्जुन किसी प्रकार के लोभ-लालच से प्रेरित होकर नहीं, अपने अधिकार की प्राप्ति के लिए अन्यायी या आततायी शासक वर्ग के विरुद्ध लड़ने के लिए युद्ध भूमि में आया था । लेकिन देहनाश या मृत्यु के भय से, मोह के कारण दुख, वेदना और निराशा व्यक्त करते हुए कायर की तरह लड़ाई के मैदान से भागने के लिए तत्पर था । ऐसी जटिल परिस्थिति में तत्त्वदर्शी भगवान कृष्ण ने अर्जुन को तुरत आत्मज्ञान की बात समझाकर युद्ध करने की अनिवार्यता और युद्ध न करने के विचार की निरर्थकता के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा-कवि के शब्दों में—

यदि तुम युद्ध नहीं करते तो निश्चय ही नरक में पड़ोगे
सारी यश-कीर्त्ति गँवाकर, अपयश को सहते रहोगे

बहुत दिनों तक करेगी, दुनिया तुम्हें बदनाम
देख, यशस्वी पुरुष की बदनामी मानते लोग मृत्यु समान ।

जीवन ही संघर्ष है । जीवन-संघर्ष के दौरान प्रायः प्रत्येक को परिस्थितिवश अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है । किस मार्ग को अपनाये किसे छोड़े । मित्रसेन के जीवन में भी अनेक बार यह समस्या उत्पन्न हुई । आर्थिक लाभ के लिए अपने निष्काम सेवाकार्य को छोड़ दें कि आर्थिक कष्ट को सहते हुए भी दृढ़तापूर्वक परोपकार के रास्ते पर चलते रहें ? दूसरे के द्वारा खिल्ली उड़ाए जाने पर झ्याउरे गीत लिखना और गाना छोड़ दें याकि तीखें व्यंग्य के कलात्मक प्रयोग को आजीवन जारी रखें । लेकिन गीता के उपदेश से मित्रसेन ने कदम-कदम पर मार्गदर्शन प्राप्त किया । वे अन्तिम साँस तक बिना रुके और बिना थके संघर्ष करते रहे, समाज को जगाते रहे, जन-जन में देशभक्ति, मानव-प्रेम और समाज उत्थान की भावना फैलाते रहे । अत्यधिक भ्रमण और परिश्रम से उनका शरीर क्षीण हो गया था लेकिन तौभी उन्होंने जीवन-संघर्ष से भागने का काम नहीं किया, आराम-विश्राम नहीं चाहा ।

गाँधीजी ने गीता को अनासक्ति योग का नाम दिया और निःस्वार्थ भाव से किए गए सेवा-कार्य को मानव-जीवन की पवित्र साधना बताई । लोकमान्य तिलक ने भी 'गीता-रहस्य' में निष्काम कर्म की ही विशेष सराहना की है । निष्काम कर्म से युक्त समाज सेवक अथवा देशसेवक का हृदय कैसा होना चाहिए, इसे मित्रसेन ने इन पंक्तियों में दर्शाया है—

न रख फल की इच्छा मन में, निष्काम कर्म करते जाओ
होकर दीन-हीन माँगने की अपेक्षा, दानी बनकर बढ़ते जाओ।
अपनी सन्तान की सेवा करती है माता जिस तरह
वही भावना रखकर मन में, कर्म जगत में करते जाओ ।

मूल ग्रन्थ में महाकवि व्यास ने निष्काम कर्म करनेवाले के रूप में राजा जनक का उदाहरण प्रस्तुत किया है । लेकिन यहाँ मित्रसेन ने और भी सरल तरीक़े से अपनी सन्तान के प्रति माँ के निष्काम सेवा-भाव का उदाहरण देकर मानव हित के लिए काम करने की

बात बताई है । माँ से अविरल रूप में पाई जाने वाली प्रेरणा, सहयोग या सहायता तथा इसके लिए माँ का अपार स्नेह, कष्ट सहन और त्याग की भावना को मद्देनजर रखकर कवि ने जनक के स्थान पर माँ को विशेष महत्त्व दिया है—लेकिन शब्दार्थ करने पर 'जननी' और 'जनक' में लिंग भेद के अतिरिक्त कोई अन्तर शायद न दिखाई पड़ेगा ।

ससार के सभी मनुष्य अथवा अधिकांश मनुष्य भी यदि निष्काम कर्म की शिक्षा को ग्रहण कर लेते तो विश्वशान्ति का लक्ष्य सरलतापूर्वक पूरा हो सकता था और प्रत्येक देश तथा समाज में सुख समृद्धि का निवास हो सकता था । लेकिन, लोभ और स्वार्थ मे अन्धा होकर सभ्य कहलानेवाले देश के अधिकाश शिक्षित और निपुण लोग तरह-तरह के सिद्धान्त तैयार कर, आपस में घृणा-द्वेष फैलाकर ससार को सर्वनाश के रास्ते पर ले जा रहे हैं । ऐसे अज्ञानी लोगों के ऊपर व्यंग्यप्रहार करते हुए कवि ने लिखा है—

अज्ञानी स्वार्थी लोगों की होती है बुद्धि भिन्न-भिन्न अनेक
लोभ की आँधी में उड़ते हैं और लुप्त होते शास्त्र अनेक
स्वार्थी गुरू, स्वार्थी शिष्य खेलते होली स्वार्थांध हो
होकर स्वय अन्धा बाबा कैसे बतायें राह दूसरे अन्धे को ।

गुरु-चेला अर्थात् नेतागण और उनके अनुयायी लोग स्वार्थ और लोभ से अन्धा होकर अपनी मौज़-मस्ती मे मस्त रहते हैं, ऐसे में मानव समाज सुख-समृद्धि और शान्ति की ओर कैसे आगे बढ़े । कवि की यह बात भूत, वर्त्तमान और भविष्य—तीनो के लिए सत्य ठहरती है । धर्म, जाति, बोली, भाषा और खान-पान इत्यादि सभी मे भेद-भाव को समाप्त करके जबतक प्रत्येक मनुष्य सर्वधर्म समभाव, सर्वजाति समभाव, सह अस्तित्त्व का भाव एवं मानव धर्म के भाव को अंगीकार नहीं करेगा तबतक विश्वशान्ति को ख़तरा है, देश-देश की आज़ादी को ख़तरा है, समग्र मानव-समाज को बहुत अधिक खतरा है । मित्रसेन द्वारा लिखी गई गीता की अन्तिम पंक्तियों में समता-भाव की ही चर्चा है । कवि के शब्दों में—

सबको समान भाव से देखें, न रख बड़े-छोटे का भेद

ज्ञानी की होती एक आँख पर अज्ञानी रखते आँख अनेक
समता भाव को रखकर जो देखते सबको एक समान
वही होते निष्काम कर्म के स्थितप्रज्ञ यात्री महान ।

जिसके हृदय में सभी प्राणियों के लिए दया और प्रेम है, जिसके बुद्धि-विवेक ने संपूर्ण मानव जाति को समान समझने का ज्ञान उपार्जितकर लिया है और जो निष्काम-निःस्वार्थ सेवा और परोपकार का कार्य सदा करता है, वही मनुष्य वास्तव में स्थितप्रज्ञ है । वही शाति मोक्ष, निर्वाण या मुक्ति प्राप्त कर सकता है । भक्ति, ज्ञान और कर्म के रहस्य को उद्घाटित करने और जन-जन को सुख, समृद्धि, शाति की राह पर अग्रसर कराने के लिए गीता के प्रचार-प्रसार के काम में मित्रसेन ने प्राण रहने तक कोई क़सर नहीं छोड़ी । गीता से ही विशेष प्रेरणा पाकर वे महाभारत पुराण आदि ग्रन्थों से मूल्यवान सामग्री की खोजकर अनेकानेक कृतियों की रचना कर सके ।

महाभारत

गीता के सफल संपादन और गायन के प्रचार से प्रेरित होकर मित्रसेन ने 1935 से महाभारत के कुछ प्रमुख सर्गों को उसी तरह गा सकने के उद्देश्य से खण्ड काव्य के रूप मे लिखना शुरू किया । इस प्रकार दो वर्षों के अन्दर उन्होंने आदि पर्व, सभा पर्व, विराट पर्व, उद्योग पर्व और भीष्म पर्व को लिखकर समाप्त किया । प्रतिदिन दो-ढाई घटे की दर से प्रायः एक महीना तक लिखकर गीत-संगीत के माध्यम से महाभारत के कथा-व्याख्यान के कार्यक्रम को श्रोताओं को सुनाने के लिए कवि ने योजनाबद्ध तरीके से तैयार कर लिया था ।

जाति, भाषा और क्षेत्र की चहारदीवारी को लाँघकर मानव मात्र के आध्यात्मिक, नैतिक या सामाजिक उत्थान के लिए मार्गदर्शन हेतु इस पवित्र महाभारत ग्रन्थ का सरल नेपाली भाषा मे अनुवाद करना तथा परम्परागत ढंग से मंगलमूर्ति श्रीगणेश की सादर याद में कुछ लिखना उचित ही था । आदि पर्व (240 पंक्ति) के आरभ में कवि द्वारा इस सम्बन्ध में लिखे कुछ अंश इस प्रकार हैं—

जय-जय गणपति विघ्न विनाशक ऋद्धि सिद्धि की खान
शक्तिदायक, बुद्धि प्रदायक, समस्त सृष्टि की जान
एकदन्त, गजवदन, दया निधि, सकल कष्ट भयहारी
मंगलमूर्ति अखिलेश्वर तुम, सबके हो हितकारी ।

विघ्न विनाशक गणपति जी की स्तुति गान करने के बाद कवि ने सम्पूर्ण कलाओं में निपुण माँ सरस्वती का आशीर्वाद पाने के लिए विनती की है—

जय-जय माता वीणावादिनी, विद्या-बुद्धि का भंडार
स्वीकार करो माँ तुम मेरा, नम्र भाव से नमस्कार
लिखता हूँ मै निज भाषा में, जाने-अनजाने ही आज
कथा सुनानी है महाभारत की, पूर्ण करो माँ काज ।

मित्रसेन के जीवन-काल मे उनकी कोई कृति पुस्तक रूप में प्रकाशित न हो सकी । लिखकर और गाकर उन्होने बहुत प्रसिद्धि पाई, कुछ नाटक और गीत-भजनादि की रिकॉर्डिंग भी कराई । मात्र 'सुनाने' का वरदान माँगा था—उनकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण हुई । तो भी उनकी पाण्डुलिपियों को एक-एककर छापने का उत्तरदायित्व आजकल भागसू की 'मित्रसेन साहित्य सगीत सभा' ने लिया है । मित्र की डायरी और कुछ कविता-झ्याउरे को लेकर पहली पुस्तक उक्त सभा ने छापी भी है । कवि के जन्म शताब्दी समारोह (1994-95) से पहले ही उनकी कृतियों को छापने का निश्चय उक्त सभा ने किया है । इसलिए, इन पक्तियो के लेखक का इस छोटी पुस्तक में कवि के जीवन और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध मे संक्षिप्त रूप मे कुछ जानकारी या परिचय देने भर का एक तुच्छ प्रयास है । मित्रसेन की सारी पुस्तकें प्रकाशित होने पर ही विद्वान् आलोचक वृन्द द्वारा यथेष्ट रूप से मित्रसेन साहित्य की समीक्षा आलोचना करना संभव हो सकेगा ।

'आदि पर्व' मे मित्रसेन ने वेदव्यास के शिष्य सुतगुनि द्वारा अठासी हजार ऋषियो की सभा में महाभारत की कथा सुनाने का दृश्य, महाराजा परीक्षित की मृत्यु, जन्मेजय का यज्ञ, नागराज तक्षक की चिन्ता, इन्द्र का आश्वासन, चेदी देश के राजा वशुभान की कथा एवं सत्यवती का जन्म आदि प्रसंगों को संक्षिप्त रूप में लिखा है । सत्यवती के साथ राजा शान्तनु का प्रेम, शान्तनु के पुत्र देवव्रत (भीष्म) द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा और सत्यवती-शान्तनु की सन्तानों के द्वारा पाण्डव तथा कौरवों की उत्पत्ति, आपसी संघर्ष इत्यादि की विस्तृत कथा हम महाभारत ग्रन्थ में पाते हैं । विश्व की कितनी ही विशिष्ट कृतियों में महाभारत के विषय की भरमार है । लोकप्रियता की दृष्टि से महाभारत एवं

रामायण की कथा-उपकथा हज़ारो वर्षों से भारत में अविकल रूप से घर-घर प्रचलित है । माँ अपनी-अपनी बोली-भाषा में बालक-बालिकाओ को छोटी उम्र से ही इन कथाओं को सुनाती आई है । लेकिन, गीत-संगीत की कला से इन कथा चरित्रो को सजा सँवारकर रख देने से जन-मानस में इसका और गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है । ऐसे प्रयास से ही विशाल देश की विभिन्न जाति, विभिन्न भाषा-भाषी एव विभिन्न क्षेत्र के जन समुदाय को राष्ट्रीय एकता की माला में गूँधकर रखा जा सकता है ।

महाभारत ग्रन्थ के महत्त्व के बारे मे कवि के विचार को यहाँ उद्धृत करना उचित ही होगा—

सभी तरह से रहस्यपूर्ण रसपूर्ण है, केवल कथा महाभारत
आईना की तरह स्पष्ट दिखानेवाला यह महाग्रन्थ महाभारत
ठीक से देश, समाज और मानव-धर्म के मर्म को जानने हेतु
भक्ति, योग और ज्ञान-कर्म के सीधे मार्ग को बताने हेतु
बन्धन से मुक्ति दिलाने हेतु, नीति-पुराण है महाभारत
पापी 'मित्र' की आँख खोलने हेतु पुण्य पुनीत है महाभारत ।

उस समय विशेषकर क्षत्रिय समाज में जुआ खेलने का चलन था । इसके कुपरिणाम को जानकर भी युधिष्ठिर जैसे धर्मपरायण व्यक्ति को जुआ खेलने से अत्यधिक लगाव था । युधिष्ठिर की इस कमजोरी से लाभ उठाने के लिए मामा शकुनि के परामर्श से दुर्योधन ने युधिष्ठिर को बुलाकर उसके समक्ष जुआ खेलने का प्रस्ताव रखा । शकुनि की कुटिलता के बारे मे युधिष्ठिर को अच्छी तरह जानकारी थी लेकिन दुर्भाग्यवश वे उस प्रस्ताव को नकार न सके—

देख रहे युधिष्ठिर शकुनि को सुनकर जुए की बात
हम न खेलेंगे जुआ कहते, जुआ है बुरी आदत
शकुनि के अति आग्रह से, पड़ गए दुष्ट के जाल मे
बढ़े युधिष्ठिर सोच के आगे, छोड़ेंगे दो-चार चाल में ।

एक बार खेलना शुरू करने पर जुए का नशा हर क्षण बढ़ता जाता है और नशे में माता हुआ आदमी अपना और अपने परिवार का

सर्वनाश कराने में देर नहीं लगाता । कवि ने इस बात का वर्णन यहाँ इस प्रकार किया है—

जुए के खेल में शकुनि मामा ने, बहुत ही छल-कपट किया
राजपाट, धन-दौलत सब कुछ, पाण्डव को भी जीत लिया
जुए के झोंक में अपने साथ, भाइयों को हारा ज्योंहीं-
द्रौपदी को भी आखिरी दाव में, युधिष्ठिर ने डाला त्योंही-

मित्रसेन हमारे अशिक्षित समाज में विद्यमान जुआ, शराब और पत्नी-हरण की प्रथा से बहुत चिन्तित थे । इन सामाजिक बुराइयों को हटाने-मिटाने के लिए वे आजीवन संघर्ष करते रहे । नीति पुराणादि धर्मग्रन्थ के प्रचार-प्रसार के आलावा लोकप्रिय झ्याउरे लय में शराब, जुआ और परपत्नी-हरण के विरोध में रचना करके जगह-जगह भ्रमण करते हुए सुनाने जैसा उनका समाजसेवा का काम चिरस्मरणीय है ।

महाभारत ने जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर के जुआ खेलने के दोष को दर्शायाः है, वहाँ गुण-शील सम्पन्ना द्रौपदी के द्वारा दूसरे को तीखे वचन सुनाने की त्रुटि की ओर भी उँगली उठाई है । द्रौपदी द्वारा दुर्योधन के प्रति 'अंधे पिता की सन्तान अन्धी ही होती है ।' जैसे व्यंग्य-प्रहार ने गहरा घाव कर दिया था । इस अपमान का बदला दुष्ट दुर्योधन ने किस प्रकार लिया, कवि के शब्दों में—

बोला दुर्योधन दुःशासन से इज्ज़त इसकी हरण करो
खिल्ली उड़ाई मेरी जैसी, इसको भी वैसा नग्न करो
सुन इतना बचन दुःशासन झट खींचने को साड़ी आगे बढ़ा
हो निराश सब ओर से, द्रौपदी के मन का पीर बढ़ा ।

जुआ खेलने के कक्ष में भीम, अर्जुन, भीष्म, विदुर, द्रोण, धृतराष्ट्र इत्यादि वीर पराक्रमी और ज्ञानी-ध्यानी महानुभाव उपस्थित थे लेकिन कोई भी द्रौपदी की लाज बचा नहीं सका । अन्त में, प्रभु-शक्ति के चमत्कार से ही द्रौपदी अत्यधिक बेईज्ज़ती से बच सकी । मीरा, सखुबाई, रामकृष्ण परमहंस इत्यादि अनेकानेक प्रभु भक्तों के जीवन में चमत्कार की घटनाएँ घटित होने की बात सर्वविदित है । हृदय की गहराई से की गई प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती । द्रौपदी की सादर

प्रार्थना के सम्बन्ध में कवि द्वारा व्यक्त किए गए कुछ अंश—

तुम्हारी लीला अपार है प्रभु, मुझ दुःखनी का कष्ट मिटाओ
आपके सिवा कौन है मेरा, हे हरि! आज लाज बचाओ

उक्त प्रसंगो के अतिरिक्त मित्रसेन ने सभा पर्व (750 पंक्तियों) में पाण्डवों द्वारा इन्द्रप्रस्थ की स्थापना, राजसूय यज्ञ की तैयारी, अत्याचारी जरासन्ध और दुष्ट शिशुपाल का वध इत्यादि कथा का वर्णन रोचक ढंग से किया है । लेकिन, जुए का दुष्परिणाम और नारी का घृणित अपमान इन दो सामाजिक बुराइयों की ओर कवि ने विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करने का यत्न किया है ।

धर्मराज युधिष्ठिर के जुए के व्यसन से द्रौपदी का अपमान हुआ, बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष तक राजा विराट की नौकरी का कष्ट द्रौपदी के साथ-साथ पाण्डवों को सहना पड़ा । द्रौपदी ने दुर्योधन को जो नीचा दिखाकर अपमानित किया था उसका फल उन सभी ने और भी घृणित रूप में पाया । उस समय तो द्रौपदी आत्मिक बल और भक्तिभावना से अपनी लाज बचाने में समर्थ हो गई लेकिन विराट के राज्य मे दासी के रूप में रहते हुए कामलोलुप सेनापति कीचक के हाथ से अब कैसे अपनी रक्षा करे? कीचक द्रौपदी को समझाकर, लोभ दिखाकर विनम्र याचना कर एव सभा-बीच डाँट कर, मारकर तथा भय दिखाकर अपने वश मे करने का शक्तिभर प्रयत्न करता था । अन्त में अत्यन्त दुःखी होकर उसने अपने बुद्धि-बल का प्रयोग करने का निश्चय किया । कीचक को मार सकने में एकमात्र भीम ही सक्षम है—ऐसा विचार करके द्रौपदी ने कीचक के दुर्व्यवहार की बात विस्तारपूर्वक भीम को बताई और उसके मन में जोश पैदा करने के उद्देश्य से युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम तीनों के ऊपर बड़े-बड़े व्यंग्य प्रहार किए । कवि के शब्दों में—

आपके बड़े भाई के मुख में केवल धर्म लटकता है
कर्म देखो तो अत्यन्त गिरा हुआ, अधर्म ही होता है
जुए में राजपाट गँवाकर राजपाट भाई हारे, पत्नी हारी
सत्यवादी धर्मराज युधिष्ठिर ने यों अपनी छवि बिगाड़ी
कैसा धर्म और चाल है उनकी, विचित्र मैं पाती हूँ
कैसे रखूँ अपनी इज्जत, दिल का घाव दिखाती हूँ ।

जुआ खेलना अधर्म है, चाहे यह लत धर्मराज की ही क्यों न हो । जुए के नशे मे युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ पत्नी को न हारा होता तो द्रौपदी की ऐसा दुर्दशा कदापि न होती । आहत नारी की आवाज़ ऊँची करना ही कवि का उद्देश्य है । अर्जुन की वीरता का उपहास उड़ाती हुई द्रौपदी भीम से कहती है —

धनुष के टँकार से जिसकी बड़े-बड़े वीर हैं काँपते
जिस वीर के नाम को सुनकर छिपने की हैं जगह खोजते
आज वही औरत बनकर, साड़ी-चोली पहने
जिस हाथ में गाण्डीव होता, बैठें चूड़ी डाले ।

जीवन-संघर्ष में मात्र धर्म-धर्म की माला जपने से नहीं होता, कभी अवसर आने पर छल-बल से भी काम निकालना पड़ता है-अन्यथा हम पराजय के सिवा और कुछ पा नही सकते, भीम को उकसाने के लिए द्रौपदी कहती है—

तुम जैसा योद्धा बलवान हजारों हाथी का बल है जिसको
आनन्द से चलाना कलछी है, बनकर रसोईया आज उसको
यह धर्म नहीं, भ्रम है केवल, छल है जहाँ, जय है उसकी
सीधे-भोले धर्मी की होती हार सदा, क्षय है उसकी ।

मात्र रो-चिल्लाकर अथवा अनुनय-विनय करने से नहीं होता, लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कभी-कभी तीखी आलोचना का प्रयोग करना न केवल उचित वरन् अनिवार्य भी होता है—ऐसे मनोवैज्ञानिक तथ्य को दर्शाकर कवि द्वारा कला-साहित्य में आलोचना-पक्ष को बढ़ाने की बात यहाँ स्पष्ट होती है । द्रौपदी का निशाना सटीक बैठा । भीम ने कीचक को मारने का निश्चय कर लिया—

बोला भीम कि देर से काफ़ी पकता है धर्म का फल
पहले लगता मीठा पर होता विषैला पाप का फल
जो भी हो, कल मैं निश्चय कीचक को मारूँगा
दुष्ट अधम की हस्ती मिटाकर तुमको शान्त करूँगा ।

लेकिन शायद कवि सोचता हे—यदि द्रौपदी को दासी बनने के लिए विवश न होना पड़ता अथवा अत्यन्त सुन्दरी न होती अथवा कीचक में कामवासना न जगी होती अथवा द्रौपदी ने भीम को प्रेरित न

किया होता अथवा भीम ने पत्नी की बात न मानी होती तो सेनापति कीचक का वध न होता । इसी सन्दर्भ में कवि द्वारा रचे गये गीत के कुछ अश—

ऐसी ही नारी, शक्ति जगत की होती है
क्रोधित हो चण्डी तो धारा रक्त की बहती है
है यहाँ आवश्यक नहीं बन्दूक और गोली
जिह्वा मात्र करती है, दुनिया की होली ।

विराट-पर्व (1840 पक्ति) मे मित्रसेन ने पाण्डवो द्वारा गुप्तवास की तैयारी, राजा विराट की नौकरी की स्वीकृति, दुष्ट कीचक का वध, कौरवो के आक्रमण से राजा विराट की रक्षा इत्यादि घटनाओं का वर्णन विस्तार-पूर्वक किया है ।

दुर्योधन ने वनवास और गुप्तवास की अवधि निर्विघ्न समाप्त करने के बाद पाण्डवों को राज्य वापस कर देने की बात मान ली थी । लेकिन वह शर्त्त पूरी हो जाने पर भी कौरवों द्वारा इस सम्बन्ध में कोई रुचि न दिखाये जाने की स्थिति में पाण्डवो के हितैषी श्रीकृष्ण ने द्रौपद, सात्यकी, विराट और बलराम आदि नरेशो को मत्स्य पुरी मे बुलाया । बैठक में स्पष्टवादी बलराम ने युधिष्ठिर के ऊपर आक्षेप लगाते हुए शान्ति-प्रस्ताव का सुझाव दिया—

होकर विद्वान धर्मराज भी, करते काम अनजान से
जुए को जान गलत फिर भी खेलते आँख बन्द करके,
अब जैसा हो, आपस मे सलाह चाहिए दोनों की
साँप मरे लाठी टूटे ना, युक्ति ऐसी करनी होगी ।

द्रौपद ने बलराम के सन्धि-प्रस्ताव का समर्थन किया लेकिन कौरव दरबार में दूत भेजने के पहले अपने सैन्य पक्ष को मजबूत बनाने की सलाह भी दी । अधिकार माँगने से आसानी से मिलता नहीं । इसे प्राप्त करने के लिए मजबूत संगठन-शक्ति और अवसर आने पर बड़ा संघर्ष कर सकने के साथ-साथ असीम बलिदान दे सकने के संकल्प की आवश्यकता होती है । प्रथम विश्वयुद्ध में गाँधीजी ने जनतंत्रीय प्रणाली का समर्थन करनेवाले देश (इंग्लैंड) का पक्ष लिया था—इस आशा और भरोसे से कि शायद युद्ध के बाद भारत के

स्वराज्य की माँग पूरी कर देगा । लेकिन शासकवर्ग के दमन-चक्र की नीति से क्षुब्ध होकर गाँधी जी को संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ा । जन-जागरण और सगठन के कार्यक्रम में देश के विभिन्न भाषाभाषी साहित्यकार और कलाकारो का सेवा-सहयोग तथा प्रयास-उद्योग इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है ।

मित्रसेन ने उद्योग-पर्व (1840 पंक्ति) में पाण्डव और कौरव— दोनों पक्षों द्वारा संसार भर के राजाओं को अपने-अपने पक्ष में करने के उद्योग प्रयास, विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को मानवीय मूल्य के सन्दर्भ में बताई गई अनमोल शिक्षा की बातें (विदुर नीति) श्रीकृष्ण द्वारा कौरवों के दरबार में शान्ति-प्रस्ताव प्रस्तुत करने का वृतान्त विस्तार-पूर्वक लिखा है । विदुर-धृतराष्ट्र संवाद में कवि ने लगभग तीन सौ पंक्तियों में हमारी प्राचीन संस्कृति की व्याख्या करते हुए अनेकानेक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के तत्त्वों को दर्शाया है । यह अंश प्रष्टक है—

दया दर्म का मूल है, दया को श्रेष्ठ गुण जानिए
दया-पात्र दुर्योधन है यदि, पाण्डव को भी वैसा मानिए,
जबतक देह में प्राण नरों के, सबका हित पड़ता है सोचना
अपने जैसा मान सभी को, सबका पड़ता मान बढ़ाना ।

गीता की तरह विदुर-नीति की प्रत्येक पंक्ति में मानवीय मूल्य का भंडार है । अत्यधिक तप, भक्ति और साधना के द्वारा बहुत सारे गुणों को स्वयं बटोरकर इस निधि को बाँटने के लिए मित्रसेन जगह-जगह घुमते रहे । पर-स्त्री पर मन को न बिगाड़ो, दूसरे की धन-सम्पत्ति पर आँख न गड़ाओ । दूसरे यदि आपको न कहे तो अपने मुँह मियाँ मिट्ठू न बनो, अपने दोष को छिपाकर दूसरे को दोषी न ठहराओ, दुख-कष्ट आ जाने पर न घबड़ाओ, दूसरों को मत डराओ, दूसरे का बुरा मत सोचो, कुसंगति में मत पड़ो, मन में क्रोध और द्वेष को स्थान न दो, दुःखी-गरीब को मत दबाओ, इन्द्रियों को वश में रखो, करने योग्य काम को तुरंत कर डालो, बड़ों का आदर करो, छोटे के ऊपर दया-स्नेह रखो, विद्या पढ़कर उसका चिन्तन करो और उसे व्यवहार में उतारो, बड़े जो कहें उसे मानों,

मीठे वचन बोलो, सम्पूर्ण मानव को समान समझो, परोपकार का कार्य करते रहो इत्यादि उपदेश का खजाना विदुर-नीति में संग्रहीत है । मित्रसेन ने सरल नेपाली भाषा में इसका अनुवाद करके भारतीय संस्कृति के प्रचार में बहुत बड़ा योगदान किया है ।

प्रत्येक देहधारी मनुष्य में थोड़ा-बहुत दोष या त्रुटि तो होती ही है । लेकिन, दुर्योधन के समान अनुदार, अभिमानी, लोभी, क्रोधी और छली-कपटी मनुष्य को जितना भी उपदेश दिया जाय वह टेढ़ा का टेढ़ा ही रहता है । भीष्म, द्रोण, विदुर और भगवान कृष्ण ने उसे यथासंभव समझाया । पाण्डवों के राज्य को वापस न कर उनके निर्वाह के लिए पाँच गाँव ही दे दो, ऐसा कहने पर दुर्योधन ने यह उत्तर देकर कि बिना युद्ध के सूई की नोक के बराबर भी जमीन न दूँगा शान्तिदूत श्रीकृष्ण के सन्धि-प्रस्ताव को लात मार दी ।

क्या है पाण्डवों का जो माँगते हैं, राज्य का हकदार केवल मैं हूँ
पहले भी था यह राज्य मेरा, आज भी इसका अधिपति मै हूँ
केवल कृपा थी यह मेरी जो राज्य आधा उन्हें मिल गया था
रख न पाये वे उसे, दुर्बुद्धि के कारण सब खो दिया था
रण की करो अब बात केवल, तैयार हूँ मैं जिसके लिए
तुच्छ पाण्डवों की क्या हस्ती, लघु कीट से हैं मेरे लिए ।

अत्यधिक उद्योग-प्रयास किए जाने पर भी महाभारत के भयंकर युद्ध को रोकने में विफल होकर कृष्ण खाली हाथ वापस आने को विवश हो गए । लेकिन हस्तिनापुर छोड़ने के पहले उन्होंने दुष्ट पुत्रों के मोह में पड़े अन्धे राजा धृतराष्ट्र को अन्तिम चेतावनी देना उचित समझा—

है आपके हाथ में अब बुलाकर दुर्योधन को समझाइये
है आपके ऊपर भार आज, रक्तपात भीषण रूकवाइये
यदि मेल न होगा आपस में, प्राणी असंख्य मर जायेगा
जब न्याय-धर्म की परवाह न हो, संसार नष्ट हो जायेगा ।

भीष्म-पर्व (750 पंक्ति) में मित्रसेन ने बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह के पराक्रम, तेज और बुद्धि की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है । परिस्थितिवश दुष्ट दुर्योधन के पक्ष मे युद्ध करने के कारण उन्हें पराजय का मुँह देखना पड़ा लेकिन पूरे अठारह दिनो के भयंकर युद्ध में बूढ़े भीष्म ने दस दिनों तक कौरव दल के प्रधान सेनापति के रूप में युद्ध संचालन किया तथा पाण्डव दल को बहुत परेशान किया—यह बात यहाँ उल्लेखनीय है । अर्जुन के रथ को चकनाचूर होते तथा तीक्ष्ण वाण के प्रहार से मूर्च्छित होते देखकर अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी प्रतिज्ञा भंग करते हुए भगवान ने भीष्म को मारने के लिए चक्र उठा लिया, यह दृश्य भीष्म के ब्रह्मचर्य, तेज और पराक्रम का परिचय देता है । कवि के शब्दों में—

खोलकर रथ का पहिया, ले उसे चक्र-सा घुमा दिया
रखकर भू पर धनु भीष्म ने, दोनो हाथो को जोड़ दिया
बोले सौभाग्य हमारा है जो ऐसा मरण मैं पाऊँगा
कृपा करके रखे वचन मेरा, आनन्द बहुत मैं पाऊँगा ।

हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के सर्वोच्च सेनापति महात्मा गाँधी को अहिंसात्मक सत्याग्रह-आन्दोलन प्रारंभ करते समय इस प्रकार के अनूठे नैतिक अस्त्र की उपलब्धि कैसे हुई? इसका वृतान्त उन्होने अपनी आत्मकथा के तीसरे (मध्य) भाग में सविस्तार लिखा है और इस सम्बन्ध में गीता के श्लोक (2159) तक को उद्धृत किया है । "विषया विनवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः रसवर्ण रसोअप्यस्य परं दृष्ट्वा निर्वन्तते ।" गीता के इस श्लोक से प्रेरणा लेकर उन्होने छत्तीस वर्ष की उम्र में, सन् 1906 से ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर लिया तथा अपने आश्रम में इस प्रकार के विवाहित अथवा अविवाहित ब्रह्मचर्य व्रतधारी सत्याग्रही देशसेवकों को भरती किया । स्वतंत्रता-संग्राम में हो या सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र में सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न रखनेवाले, तेज और पराक्रम से युक्त—निर्भीक या निष्काम स्वयंसेवकों का प्रत्येक देश और समाज में सदा अभाव होता है । इसके महत्त्व को अच्छी तरह समझकर मित्रसेन ने भी सार्वजनिक सेवा-कार्य में कूद पड़ने के लिए संयमशील जीवन को अपना लिया

था । जो भी हो, महाभारत ने आदर्श के रूप में भीष्म को जो इस प्रकार खड़ाकर दिया है, इससे मानव-मात्र का बहुत उपकार हुआ है ।

भीष्म पितामह ऐसे भयंकर युद्ध के पक्ष में कदापि नहीं थे । वे प्रारंभ से ही दुर्योधन को पाण्डवों से युद्ध न करने के लिए समझाया करते थे लेकिन दुष्ट दुर्योधन अनेक बार उनकी भर्त्सना किया करते थे और उन पर आरोप लगाते थे कि वे पाण्डवों के हितैषी हैं । जिस दुष्ट ने भगवान कृष्ण तक की सलाह न मानी वह भला भीष्म को क्यो टेरता? अन्त में, युद्ध के दसवें दिन जब अर्जुन ने भीष्म को परास्त कर दिया तब भीष्म ने दुर्योधन को आख़िरी परामर्श दिया—"अब लड़ाई बन्द कर दो" परन्तु उसने माना नहीं—

जैसे गिरे भीष्म पितामह मच गया हाहाकार वहाँ
दोनों पक्षों के वीर गये, दुख के मारे रण रोक वहाँ
मत शोक करो रत्ती भर भी, मन में कोई अब मेरे लिए
बस, प्यास लगी मुझको बेहद, दो पानी कोई अब मेरे लिए

दुर्योधन ने सोने के पात्र में शीतल जल मँगा दिया लेकिन भीष्म उसे ग्रहण करने के लिए तैयार न हुए और इशारे से अर्जुन को कोई आदेश दिया—

तब अर्जुन ने वरुण अस्त्र से पृथ्वी के अन्दर छेद किया
भीष्म के मुख तक धारा को, जल की उसने पहुँचा दिया

पानी पीकर भीष्म कुछ समझाने का प्रयास करते हैं—

कहते भीष्म दुर्योधन से देखो पाण्डव के बल को
देकर आधा राज्य शीघ्र मानो मेरे अन्तिम वचन को

लेकिन भीष्म का अन्तिम वचन भी वैसे ही व्यर्थ गया—

देकर न कोई उत्तर इसका, दुर्योधन शिविर में चले गए
रण रोक सके न दोनों का, भीष्म बहुत निराश हुए—

जब भारत में राजनीतिक और सामाजिक हलचल मची हुई थी उस वेला में मित्रसेन ने महाभारत जैसा अनुपम एवं महान ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार का बेड़ा उठाया, यह उनका एक आवश्यक और सामाजिक क़दम था—ऐसा प्रतीत होता है । विशेषकर युवावर्ग की

आत्मा को शक्तिशाली बनाकर जहाँ उन्हें जीवन-संघर्ष की ओर अग्रसर कराने की कवि की आकांक्षा थी, वहाँ नारी समाज को जाग्रत करके उन्हें उत्थान के मार्ग पर बढ़ाने का लक्ष्य भी प्रतीत होता है । जो भी हो, उनके द्वारा भारतीय जीवन-सस्कृति की प्राचीन गौरवमय परम्परा को सरल भाषा तथा सरल संगीत के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास वास्तव में अद्वितीय है, अविस्मरणीय है ।

अन्य खण्डकाव्य

जब तक हमारा समाज जगेगा नही और जबतक हमारा बालक, बालिका तथा युवा-वर्ग नैतिक रूप से शक्तिशाली नहीं होगा तब तक हमारे समाज का उत्थान संभव नहीं है । ऐसा विचार करके मित्रसेन ने गीता और महाभारत के अलावा आध्यात्मिक या नैतिक मूल्य से युक्त अनेक कथा-पात्रों को छन्दबद्ध करके खण्डकाव्य के रूप में सृजित किया था ।

परिवार में सुख-शान्ति की वृद्धि की कामना मन में लेकर 'सत्य नारायण' की कथा कराने की प्रथा हमारे समाज में प्रचलित थी । मित्रसेन इसी लोकप्रिय कथा को सरल भाषा में लिखकर तथा जगह-जगह जाकर सुनाया करते थे । उनका यह प्रयोग भी बहुत सफल सिद्ध हुआ । कथावाचक के रूप में जनमानस में उनकी धाक और भी गहरी जम गई, प्रसिद्धि भी अबतक फैल गई । 'श्री सत्य नारायण' खण्ड काव्य (285 पक्ति) से कुछ अंश—

लीलावती के भक्ति-पूजन से, भगवान अति प्रसन्न हुए
रूपवती कन्या हो तुमको, सपने में वरदान दिए
हुआ विवाह अति धूमधाम से, कन्या ने सुन्दर वर पाया
लेकिन माँ वह भूल गई, व्रत-कथा सुनने का जो वचन दिया

हाँ, केवल दुःख पड़ने पर मनुष्य को ईश्वर की याद आती है । लेकिन सुख में वह दिया गया वचन भी भूल जाता है । प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कवि लिखता है—

करने को व्यापार चले वह साधु वणिक परदेश को
सिखाने को व्यापार साथ में लिया अपने दामाद को
दूसरे राज्य में स्वसुर दामाद हो गए बन्दी दुर्भाग्य से
रोते थे दिन-रात वहाँ, घर-परिवार की याद से

जब ग्रहदशा बिगड़ जाती है तो सभी तरह दुःख-संकट आने लगते हैं । इसी प्रकार—

घर में भी चोरी हुई, पड़ गई कष्ट में लीलावती
खबर पति-पिता की सुनकर, अचेत हुई कलावती ।

इतनी दुर्दशा ने बाद अचानक लीलावती को ध्यान आता है—

अचानक लीलावती को याद हुई जो उसने था वचन दिया
भगवान गुस्साये निश्चय ही, ऐसा उसका अनुमान हुआ
माँ-बेटी ने मिलकर दोनो, व्रत कथा को सम्पन्न किया
प्रसन्न हुए तब सत्यनारायण, मनोवांछित फल प्राप्त किया ।

कालिदास ने रघुवश नाटक में व्रत-उपवास के महत्त्व को अच्छी तरह बताया गया है । श्रीराम के पूर्वज राजा दिलीप ने गुरू वशिष्ठ से योग्य सन्तान प्राप्त करने का उपाय जानना चाहा तो गुरू ने उन्हें रानी को साथ लेकर तथा जंगल में जाकर एक वर्ष तक गाय की सेवा-पूजा करने का परामर्श दिया था । उक्त अवधि में व्रत-उपवास रखकर श्रद्धापूर्वक सेवा-तपस्या करने से उन्हें ओजस्वी सन्तान पैदा हुई और उसी कुल में कई पीढ़ी बाद श्रीराम के समान चरित्रवान बालक ने जन्म लिया । महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में अपने अनूठे उपवास व्रत के रहस्य को खोलते हुए माँ द्वारा कठोर व्रत-उपवास करने का उल्लेख किया है । व्रत-उपवास करने से आत्मशुद्धि होती है, और आत्मबल बढ़ता है । उक्त विचार को मन में रखकर मित्रसेन ने सभी नर-नारी को व्रत-उपवास करने की आवश्यकता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । 'एकादशी व्रत' खण्डकाव्य (152 पंक्ति) में कवि ने कथा के प्रसग को इस प्रकार दिखाया है—

ए बहना, इस व्रत के बदले, जो भी माँगो, दूँगी
यदि मेरा सर माँगो तो, सुख से काट धरूँगी ।
केवल मेरे पति को दे दो, एकादशी-व्रत रखने की अनुमति
दो बाधा मत इसमें तुम, तब से आई है जो प्रथा चलती ।

वास्तविक मौका हाथ आया देखकर ईर्ष्यालु छोटी रानी सुन्दरी राजा के सामने, उनके द्वारा पूर्व में दिए गए वचन की याद दिलाते हुए

किस प्रकार की अनूठी माँग रखती है—

सुनकर संध्या की बात बोली, राजा से रानी चिल्लाकर
लड़के का सिर दो काट मुझे मन को मजबूत बनाकर

फिर—

ऐसी कठोर माँग को सुनकर राजा करने लगे विलाप
कैसी भूल की मैने पहले, करते अब पश्चात्ताप
एकादशी-व्रत मैं रखूँ, जाता बेटे का प्राण
ऐसे में क्या करूँ प्रभु मै, दे दो मुझको ज्ञान ।

पिता को द्विविधा में पड़ा देखकर वह वीर बालक ज़रा भी नहीं घबराया बल्कि पहले की तरह ही रहा । फिर—

पितृभक्त बालक ने खूद ही, लाकर खड्ग रख वहाँ दिया
घुटने टेक भूमि पर बैठा, सिर को आगे झुका दिया
राजा थर-थर काँप रहा था, थी बहती अश्रु की धारा
रखकर मन पर पत्थर तौभी, था खड्ग हाथ में उठा लिया
'जय भवानी' बोल राजा ने, तलवार चलाना चाहा ज्यों
गर्दन तक जाने के पहले, प्रभु ने हाथ पकड़ा त्यों ।

अन्त में कवि लिखता है—

धन्य-धन्य धर्मरक्षक वीर, धन्य हैं तेरे धर्मी पिता
पितृभक्त पुत्र पैदा करनेवाली, पतिव्रता है तेरी माता ।

भारतीय नारी का चरित्र-चित्रण करने मे शरत् चन्द्र बहुत प्रवीण थे । 'श्रीकान्त' उपन्यास में उन्होने प्यारी नाम की वेश्या के उत्कृष्ट प्रेम का नमूना दिखाया है । उसी तरह भोग-विलास में संलिप्त बिल्वमंगल को तत्त्व ज्ञान प्रदान कर उसे साहित्य-सगीत के क्षेत्र में अग्रसर करानेवाली वेश्या चिन्तामणि का प्रेम-उत्सर्ग सर्व विदित है । 'बिल्वामंगल-चिन्तामणि' खण्डकाव्य (1760 पंक्ति) से उद्धृत कवि के कुछ शब्द—

कहती चिन्तामणि, हे दुष्ट बिल्वा, तू अतिनीच और पापी हो
धर्मकुलनाशक पिता विद्रोही, चरित्रहीन दुराचारी हो
विषय-भोग-वासना के ख़ातिर, मेरी कुसंगति में पड़कर
अनमोल जिन्दगी को व्यर्थ किया, मोह-माया में फँसकर

छोड़ झमेला सब तू, कर अब लोक-परलोक का विचार
प्रभु-प्रेम अमृत रस जब पाओगे, तब समझोगे जीवन का सार।

चिन्तामणि के मुख से इस प्रकार का कठोर वचन सुनकर—

भारी चोट लगी दिल को, लगी बहने आँसू की धारा
हो गई कृपा प्रभु की जब तो, बिल्वा के मन वैराग्य भरा
पागल-सा वह दौड़ पड़ा वन को जब माया बिछुड़ी
रोता था वन-वन घुम-घुम ले कृष्ण नाम को घड़ी-घड़ी ।

चिन्तामणि की कृपा से भारतीय सगीत एवं ब्रजभाषा-साहित्य का भाग्योदय हुआ । बिल्वमंगल अमर ख्याति प्राप्त कर सके । बाद में वे सूरदास के नाम से विख्यात हुए । भक्ति-वात्सल्य रस के वे सर्व श्रेष्ठ कवि माने गए । कवि के शब्दों में—

हरिभजन को गाते, रोते, राह टटोलकर चलते
सुमधुर मीठे वचन को सुनकर, पेड़-पत्ते झूलते
भक्त के प्रेम से खींचे जाकर, आए प्रभु बालक बनकर
हँसते, बोलते, नाचते हरदम, सूरदास के अगल-बगल ।

मित्रसेन ने महाराष्ट्र की महिला सन्त सखुबाई की अनूठी भक्ति का वर्णन दूसरे खण्डकाव्य (330 पंक्ति) में किया है । सखुबाई की दुर्दशा का बखान करते हुए कवि लिखता है—

काम करने पर भी ठीक से सास को नहीं अच्छा लगता
बाल खीचता सबके सम्मुख, अनादर सखु का होता
कर उपेक्षा पति भी उसकी, हरदम पीटा करते थे ।
देख उसे विनम्र और सीधा, बने सभी निर्दयी थे ।

लेकिन अपने ऊपर होनेवाले सभी अत्याचार को सखुबाई ईश्वर की कृपा ही मानती—

धन्यवाद प्रभु की करके, करती बारम्बार प्रणाम
आपकी टेढ़ी निगाह के कारण, होता है मेरा अपमान
मिले आदर यदि मुझको, मन में बढ़ जायेगा अंहकार
सुख पाकर कहीं मन मेरा न करे भक्ति का तिरस्कार ।

सखुबाई को एकबार सास, स्वसुर एवं पति ने मिलकर खूब पीटा और खूँटे में बाँध दिया । सखु की इस दुर्दशा को देखकर भगवान

ने एक स्त्री के रूप में आकर सखु को बन्धन-मुक्त किया तथा उसे पंढरपुर जाकर विट्ठल-दर्शन करने की सीख दे स्वय को खंभे मे बाँध लिया । अचानक पति के मन में सखु के प्रति दया और प्रेम जग गया और वे पछताने लगे-

हाय बेचारी सती साध्वी को मैंने इतना कष्ट दिया
हुआ अनर्थ ऐसा मुझसे, अब कैसे भोगूँ फल इसका
क्षमा करो मेरे अपराध को, कहकर माफी माँग रहा
पछताता जाकर पास सखु ने, आँसू पोछ प्रणाम किया ।
धन्य-धन्य हे भक्त के प्रेमी, नीच का पैर भी पकड़ लिया

नारी में उपवास-व्रत, प्रभुभक्ति, सेवा-परिश्रम, कष्ट सहन, मृदुलता, विनम्रता एवं पुरुष को प्रेरणा देने जैसे गुण विद्यमान रहने पर ही, वह गुणी सन्तान को जन्म दे सकती हैं । गुणशील सम्पन्न सन्तानो से ही किसी जाति, समाज और देश का उत्थान संभव है । ऐसा दृढ़ आस्था-विश्वास मन में रखकर मित्रसेन हमारे नारी-समाज को जगाने के प्रयास में जीवन-पर्यंत लगे रहे ।

गुलामी के दौर में उस समय देश को प्रहलाद के समान सत्य-परायण युवावर्ग की आवश्यकता थी । शक्तिशाली अंग्रेज़ शासक को 'प्रभु' और 'माई-बाप' कहने के हीन भाव को समाज से हटाने के लिए देशभक्त नेतालोग प्रयत्नशील थे । उस समय मित्रसेन द्वारा 'प्रहलाद' खण्डकाव्य (702 पंक्ति) की रचना कर हमारे युवावर्ग के अन्दर अत्याचारी शासक वर्ग के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए आह्वान करने का जो प्रयास किया गया इसमें उनकी देशभक्ति की भावना विद्यमान प्रतीत होती है । हिरण्यकश्यप के दरबार में प्रहलाद की अन्तिम पेशी होने पर दरबार के कर्मचारी प्रहलाद को समझाने की चेष्टा करते हैं–

कहते हैं सभी प्रहलाद से कि संभलो हे राजकुमार
पिता तुम्हारे सर्व व्यापक, साक्षात् ईश्वर के अवतार

लेकिन, प्रभु-भक्त प्रहलाद तो सत्य के अन्वेषी थे । वे भीरू और चाटुकार लोग अभिमानी राजा की झूठी प्रशंसा करके प्रहलाद को सत्य के रास्ते से डिगाना चाहते थे । प्रहलाद ने

निर्भीकतापूर्वक उन लोगों को उत्तर दिया—

ओ खुशामदी अज्ञानी जन, भूल गए तू मस्ती मौज में
धन और मान के लोभ मे पड़कर, घूमते हो तो नरक बीच मे
पिताश्री की करके बड़ाई, प्रभु-सा पूजा करते हो
झूठी प्रशसा की बातों से, उन्हें फुलाया करते हो

सभा के बीच में अपने हाँ में हाँ मिलानेवाले सरदार-दरबारी के प्रति इस प्रकार की अपमानजनक बातें सुनकर निर्दयी राजा प्रह्लाद को अन्तिम चेतावनी देता है—

बोले हिरण्यकश्यप क्रोधित हो, तुम हो मूर्ख अज्ञानी
पुत्र समझकर सहता हूँ तो तू करते जाते मनमानी
मानो मेरी आज्ञा वरना लाल लोहे से बाँधूंगा तुझे
छोड़ो अपनी जिद्द, मान ईश्वर एकमात्र तू मुझे ।

लाल लोहे के खंभे मे बाँधकर मारने पर भी प्रह्लाद मृत्यु से ज़रा भी नहीं डरा और—

कहा प्रह्लाद ने डर नहीं है मुझको, मैं प्रभु के भरोसे हूँ
रखना चाहें, रखें प्रभु जी, मारे तो सुख से प्रस्तुत हूँ ।

कितना दुःख-कष्ट आने पर भी अथवा मृत्यु को सामने खड़ा देखकर भी अपने निर्धारित लक्ष्य को न छोड़ने का दृढ़ संकल्प ही सच्चे सत्याग्रही का महान अस्त्र है । गाँधी जी के अहिंसक सत्याग्रह आन्दोलन में प्रह्लाद के समान दृढ़ प्रतिज्ञ युवावर्ग की देश को बहुत आवश्यकता थी । मित्रसेन द्वारा अपनी कला-प्रतिभा के सहारे प्रह्लाद के चरित्र के महत्व को जगह-जगह जाकर समझाना और युवावर्ग में अत्याचारी शासन के विरुद्ध संघर्ष कर सकने का साहस पैदा करना हमलोगों के लिए खुशी और गौरव की बात थी ।

जीवन संघर्ष में कितनी-कितनी तरह की जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिए विरोधाभासी युक्ति-नीति का प्रयोग एकदम आवश्यक प्रतीत होता है । युधिष्ठिर एकदम शान्त स्वभाव के थे तथा भीम एकदम क्रोधी थे, गाँधीजी दयालु प्रकृति के मृदुभाषी व्यक्ति थे लेकिन उनका परमशिष्य सरदार पटेल खरे स्वभाव के कठोरभाषी थे, राम ने क्रोध को वश में कर लिया था लेकिन लक्ष्मण को ग़लत

बात में तुरत क्रोध आ जाता था । मित्रसेन ने परशुराम-लक्ष्मण-संवाद को 76 पंक्तियों में छन्दबद्ध किया है । शिव-धनुष को तोड़नेवाले को सजा देने के अभिप्राय से काँपते हुए परशुराम अपने पराक्रम की धौंस जमाते हुए बोलते हैं—

कितनी बार क्षत्रियों को यमपुरी मैंने पहुँचाया है
अनेकानेक क्षत्राणियों को विधवा बना रुलाया है
नाम मेरा सुनकर मनुष्य भय से थर-थर काँपते हैं
धाक मेरी पूरे जग में, मुझे क्षत्रियनाशक कहते हैं

अभिमान से भरी हुई परशुराम की उक्त कटु उक्ति को सुनकर लक्ष्मण ने बिना जरा भी भयभीत हुए यह उत्तर दिया—

लक्ष्मण ने मुस्काकर कहा, खुद अपनी बड़ाई करनेवाले
क्रोध और अभिमान दिखा, मौखिक ही सब जीतनेवाले
भले वीर बलवान हों तौभी, क्या हमें आपसे प्रयोजन है
यदि लड़ने की बात हो मन में, तो हाजिर मेरा तन है ।

मित्रसेन को भानु रामायण में परशुराम-लक्ष्मण-संवाद का प्रसंग नहीं मिला तब शायद उन्होंने तुलसी रामायण से प्रेरणा लेकर उक्त लघु खण्डकाव्य का सृजन किया था । जो भी हो, कवि ने युवा हृदय में जोश और साहस भर देने के उद्देश्य से ही यहाँ लक्ष्मण के निर्भीक चरित्र को उजागर करने का प्रयास किया है ।

चक्रव्यूह के भंग कर सकने की शिक्षा अभिमन्यु ने माँ के गर्भ में ही पाई थी । आज मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं—मनुष्य की शिक्षा माँ के गर्भ से ही शुरू होती है और पाँच वर्ष की उम्र तक में उसके व्यक्तित्व के अधिकांश भाग का निर्माण-कार्य पूरा हो जाता है । महाभारत युद्ध के दौरान अर्जुन एक बार पाण्डवों से बहुत दूर हटकर युद्ध में व्यस्त थे । मौके का लाभ उठाकर कौरवदल ने युधिष्ठिर को परास्त करने के उद्देश्य से चक्रव्यूह की रचना की । अर्जुन के सिवा चक्रव्यूह को भंग कर सकने की सामर्थ्य और किसी में नहीं थी । ऐसी गंभीर परिस्थिति में पाण्डवदल को बचाने के लिए अभिमन्यु आगे आया । जयद्रथ, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि सबका सामना करते हुए वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को भंग

करके कौरव सेना को तहस-नहस कर दिया । किसी तरह भी अभिमन्यु के प्रहार को रोक सकने में सफल न होने पर दुर्योधन बहुत हताश हुआ । जब तक अभिमन्यु के हाथ में हथियार है, तब तक युद्ध करके उससे जीतना संभव नहीं, ऐसा मानकर दुष्ट दुर्योधन ने छल-कपट की नीति अपनाई । अपने हाथ के हथियार को दूर फेंककर दुर्योधन ने पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त का अभिनय शुरु किया । कवि के शब्दो में—

कहा दुर्योधन ने पास आकर, अभिमन्यु तुम वीर सच्चा हो
करता हूँ मैं सन्धि पाण्डव से, तुम सब बातें निबटा दो
पाण्डव से आज से मेरा रहा न कोई वैर अब
राज्य आधा देता हूँ खुशी से, रक्त बहाना व्यर्थ अब ।

दुर्योधन के शान्ति प्रस्ताव को सुनकर सीधा और सच्चा अभिमन्यु का मन पिघल जाता है—

कहा अभिमन्यु ने, ठीक ही है, पाण्डवों को अब ले बुला
करके बात उनसे स्वयं ही रखें यह प्रस्ताव वहाँ

अभिमन्यु के पिघलने का पता पाते ही दुर्योधन झट जमीन पर बैठ जाता है और बनावटी स्नेह दिखाते हुए तथा आँख से अश्रुधारा बहाते हुए कहता है—

हाय बेटा तेरी बुद्धि की, तारीफ़ मैं कैसे करूँ
वीरता देख मन खुश हुआ, मुख से कितनी शाबाशी दूँ
मन में स्नेह उमड़ा है, बैठो मेरी गोद में आ
दे फेंक सभी शस्त्रों को, रख न वैर आपस का ।

मीठे वचन का प्रभाव चमत्कारी होता है-कितने कठोर दिल को भी यह सहज ही जीत सकता है, फिर यहाँ सरल युवा हृदय अभिमन्यु का क्या वश । विश्वास कर जैसे ही अभिमन्यु ने अपने शस्त्रों को फेंका, तुरत दुर्योधन के साथ कौरवदल के सात महारथियों ने उसे घेर लिया और—

कहा हँसकर दुर्योधन ने, तुम फँस गए बालक जाल में
दीर्घ काल का वैरी पाण्डव, न क्रोध मिटेगा अल्पकाल में

अन्तिम इच्छा क्या है, बोल अभिमन्यु झट तू
अथवा मरने के ख़ातिर, जा हो तैयार अब तू ।

मृत्यु को सामने खड़ा देखकर भी अभिमन्यु ज़रा-सा नहीं डरा और बोला—

दे सकते हो तो दो मुझको, धनुष वाण मेरे हाथ में
यदि नहीं तो हे अत्याचारी, दूँगा प्राण खुशी के साथ मैं

युवा अभिमन्यु के साहस, बहादुरी और बलिदान की भावना का नमूना पेश कर, मित्रसेन ने इस खण्डकाव्य (1120 पंक्ति) के द्वारा स्वतंत्रता-आन्दोलन के लिए अनेकानेक युवा हृदयों में उत्साह-उमंग या साहस पैदा करके उन्हें संघर्ष-पथ पर अग्रसर कराने का प्रयास किया था ।

प्रकृति ने प्रत्येक प्राणी को कोई न कोई गुण अथवा प्रतिभा अवश्य प्रदान की है । यदि कोई छोटी उम्र में उसका पता लगा सके और उसे सार्थक करने के लिए मन लगाकर प्रयत्न करे तो भाग्य अवश्य ही उस उद्यमी मनुष्य को साथ देगा । एक निःसहाय टुअर बालक चन्द्रहास की कथा को मित्रसेन ने खण्डकाव्य (170 पंक्ति) के रूप में लिखा है । इसका कुछ अंश—

कहते हैं नारद, हे चन्द्रहास
मन में तुम हो न निराश
टूअर होकर भी मन से न मानो
प्रभु पिता हैं, यही तुम जानो

मुनि का आशीर्वाद और प्रेरणा पाकर चन्द्रहास भजन-संगीत की साधना की ओर तल्लीन हो गया—

निर्जन वन मे चन्द्रहास, हरि-हरि पुकारता है
बहाते हुए अविरल अश्रुधारा, हरि गुण गाता है ।

भक्तिभाव से ओत प्रोत चन्द्रहास के मधुर कंठ के प्रभाव से एक ऋषि ने उसे शास्त्रीय सगीत की शिक्षा दी । लगातार परिश्रम करने से चन्द्रहास की प्रसिद्धि फैलने लगी । और—

एक दिन भजन चन्द्रहास का, राजा ने सुनना चाहा
मधुर स्वर में गाने पर, उसने बहुत ही यश पाया ।

कर सलाह रानी से राजा, यों बोले, मैं कहता हूँ
मानो यदि चन्द्रहास तुम तो, पुत्र बनाना चाहता हूँ ।

इस प्रकार अपने गुण और प्रतिभा के चमत्कार से ग़रीब और टूअर चन्द्रहास राजकुमार बन गया । मित्रसेन अपने कथा गीत के कार्यक्रम के बीच-बीच में कभी-कभी शेरोशायरी का प्रयोग भी करते थे । चन्द्रहास के सन्दर्भ में उनके द्वारा प्रायः प्रयुक्त इक़बाल के शेरों में से एक शेर यहाँ उल्लेखनीय है—"खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले, खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है"—अर्थात् यदि मनुष्य कठिन मेहनत से अपने गुण और प्रतिभा को उजागर कर लेता है तो ईश्वर भी उसका भाग्योदय करने के लिए बाध्य हो जाता है ।

बालक-बालिका, युवावर्ग एवं नारी जाति में जागृति फैलाकर देश और समाज को शक्तिशाली बनाने की प्रबल आकांक्षा मित्रसेन की थी । श्रोताओं की सुविधा को मद्देनज़र रखते हुए उन्होने एक महीना तक चल सकनेवाले महाभारत के लम्बे प्रसंग की कथा लिखकर तैयार की थी । साथ ही उन्होंने छोटे और मधुर शैली मे एक-दो दिनों के अन्दर गाकर सुना सकने लायक अनेकानेक कथा-चरित्रों को भी खण्डकाव्य के रूप में छन्दबद्ध किया था । मूल रूप में संगीत-प्रेमी तथा समाज सुधारक होने के कारण मित्रसेन की कृतियों में भाषा-व्याकरण, अलंकार एवं रचना सम्बन्धी त्रुटि और अभाव बहुत दिखाई पड़ते हैं । लेकिन, उस समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो को ध्यान में रखकर तटस्थतापूर्वक सोचने पर मित्रसेन की साहित्य-साधना में हम शाश्वत 'सत्यम्' का, मंगलकारी "शिवम्" का और सरस संगीतमय 'सुन्दरम्' का साक्षात्कार भी अवश्य पा सकते हैं ।

गीत भजन

अशिक्षा और निर्धनता से ग्रस्त रोगी समाज को मात्र नैतिक या आध्यात्मिक आहार पहुँचाने से इसके दुःख तकलीफ का निवारण होना संभव नहीं देखकर, मित्रसेन ने शल्य-चिकित्सा से भी इसका उपचार करने का प्रयत्न किया । काम कठिन और ज़ोखिम से भरा था । अपने नाम-यश-कीर्त्ति को ख़तरे मे डालकर उन्होंने तीखी व्यंग्यात्मक शैली में सामाजिक दुराचार के ऊपर चोट पर चोट की । लोकप्रिय झ्याउरे-लय में सरस संगीत से श्रृंगारित उन रचनाओं को मित्रसेन के मधुर कंठ से सुनने के लिए श्रोताओ की भीड़ जमा हो जाती थी, पेट को दाब-दाबकर हँसती थी और बाद में कही-अनकही भी कहती थी । कवि द्वारा रचे गये वे झ्याउरे गीत नेपाली साहित्य कला को अनूठी देन है । इन हास्यरस से परिपूर्ण गीतों को सभा में गाकर सुनाना तथा श्रोताओ की तीखी प्रतिक्रिया का सामना करना वास्तव में कवि की प्रतिभा और साहस के साथ-साथ समाज सुधार के नये प्रयास का नमूना है । नर-नारी, बूढ़े और युवावर्ग तक के अनुचित आदत-व्यवहार की खिल्ली उड़ाने में कवि ने कोई क़सर बाक़ी नहीं रखी । हमारे कुछ आलसी-आवारावर्ग युवाओ के प्रति व्यंग्य प्रहार करते हुए कवि लिखतें हैं, कुछ अंश –

कुमार्गी होते रिक्त, अज्ञानता से और भी कंगाल
गाँठ में दाम नहीं पर करते मिस्टर श्रृंगारित बाल
घर के चूहे भूख के मारे मचाते रहते हाहाकार
पर वे बेवक्त घूमते-फिरते बजाते सीटी बारम्बार
जो होगा, देखा जायगा, कह कालर ऊँचा किये रहते

धन्य हमारे छिलका साहब, जाति का नाम डूबाते रहते ।
फैशन और फिजूलखर्ची द्वारा अपने समाज को आर्थिक रूप से खोखंला बनाने की प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए कवि लिखता है—

सूट-बूट न पहने तो साहब कौन कहेगा
मोटा वस्त्र पहने तो कुली सभी गिनेगा
भले कर्ज हो जाय मगर चाहिए विशाल बंगला
आँगन में सजा हो केवल फूलों का ही गमला
मरने पर क्या हो, ठाठ से रहना है मज़ा से

और कवि इस सन्दर्भ में आगे जोड़ते हुए कहता है—

किसी को खाता है घमण्ड तो फैशन खाता किसीको
ब्लेजर का सूट खरीद लिया और गँवा दिया सब धन को
जब तक सीजर सिगरेट नहीं होती नहीं मानता मन यह
भूख-निद्रा सब खो गई अब गया फ़िक्र और गम रह
कैसे करें अब फैशन बाबा दुखी हुआ अब तन यह ।

उस समय हमारे कई बूढ़ी-बूढ़े लोग शराब-दारू की लत के कारण पूरी तरह कर्ज में डूब गए थे । कवि के शब्दों में—

चलाती है कुमार्ग पर, लाती कंगाली यह दारु-शराब
बूढ़े ने लाया मोटा चावल आया दशहरे का त्योहार
दो-चार घड़ा पीनी पड़ी छिपकर दारु-शराब
तिब्बती दवाई लाकर, ठीक से उसे पीस गार
इष्ट-मित्र आयेंगे तो लग जायेगी डाँड़ ।

मिल-जुलकर सभी मनाओं वर्ष दिन का त्योहार, सुना कि ?
और दूसरा अंश—

आहा, कैसी यह कच्ची दारु, थोड़ा-थोड़ा हिस्सा पड़ा
दशहरा अभी दूर पर खत्म हुआ दारु का घड़ा
कहती बूढ़ी, तोड़ो रीढ़ दूकानदार की जाकर
मन में लगता वाण माँगता पैसा जब वह आकर
क्रोधित हो बूढ़ा कहता है, अब मरो तुम रांड़ ।

कमाई से अधिक खर्च करने की इच्छा रखनेवाली गृहिणी की अन्त में कैसी दुर्दशा होती है, कवि के शब्दों में—

पाँच आना है दिन की कमाई, दारू आने छः की
मांस खाने को न मिला तो देखो करती गुस्सा बूढ़ी
आदत पूरी न होने पर प्राण शरीर से भागे
महाजन से सिर छिपाकर, जाती डर-डर आगे ।
अदालत की कुर्की आने पर, बूढ़ी को आया चेत—

आर्थिक हालत ठीक न होने के कारण हमारे कुछ जातीय परिवार उस समय भट्ठी (शराब बनानें तथा बेचने की दूकान) बनाकर गुज़ारा करने के लिए विवश थे । भट्ठी के घृणास्पद वातावरण में शराब, जुआ और व्यभिचार सर्वत्र दिखाई पड़ता था । ऐसे कुख्यात स्थान में जाकर अध्ययन करना, वहीं बैठकर लिखना, गाकर सुनाना और समझाना मित्रसेन का अनूठा साहित्यिक कार्य है । भारत में धन कमाने आए हुए सैनिक इच्छित छुट्टी लेकर घर जाते थे तो रास्ते में उनकी दुर्दशा के बारे में कवि ने इस प्रकार का चित्रण किया है, कुछ अंश—

सुनो, मन में सोचो, इस जाति की बदनामी
पहला नम्बर उसकी जो बेचें दारू-पानी
पति ग्राहक खोज के बैठा, पत्नी लगा दूकान
सीधे सादे सैनिक भाई को लाते खींचतान
जाओ बाबू से बात करो, भेजते अपनी बेटी
गन्दी-गन्दी बातें करते, लाज न लगती थोड़ी, देखो तो
पिता बजाते मादल और बेटी गाती गीत
सैनिक भाई अगल-बगल रह करते हाथ से नृत्य
रातभर गीत गाते-गाते दस बोतल पीते
बेहोश पड़े सैनिक भाई का पैसा सभी चुराते
एक ही साल में पत्नी पर सोने के जेबर छाते, देखो तो
मोह त्याग माता-पिता का भट्ठी की ओर सिधारे
डम्फू-मादल बजने लगे, गीत फिर गुंजाए
रंग चढ़ा सैनिक भाई को, नोट लगे थिरकने
लूट-पाट कर रिक्त उन्हें, लगे एक ओर सरकने ।

धन-पैसा का नाश कर, वहाँ से वापस लौटे-छावनी में । निपुण

चित्रकार की तरह प्रत्येक दृश्य को स्पष्ट करने में मित्रसेन सिद्धहस्त थे । शराब बेचकर धन कमाना चाहनेवालों की खुले रूप में भर्त्सना करने के बाद कवि जुआरियों की चोटी पकड़ने पहुँचते है—

दूसरा नम्बर सुनिए उनका जो जुआ-खेल अपनाते हैं
डोम हो जो गाय खाये का ले कसम दुनिया को ठगते हैं
जीतने पर तो एक ही दिन में उत्सव हैं मनाते
देते मूँछ पर ताव, तरह-तरह की बातें हैं बनाते
हारने पर पत्नी के बालों को हैं धरते, देखो तो
आज मैंने कौड़ी खेली छः सौ रूपये जीते
दो-दो पत्नी लाई अब, चिन्ता के दिन बीते
जीते पैसे से खूब माँस-दारू खाकर
पन्द्रह दिनों मे ही सारे रूपये हुए बराबर
बेच आए छोटी पत्नी को फ़ौजी के हाथ, देखो तो
भरोसा करो न कभी होते दुष्ट हैं जुआड़ी
पत्नी को भी दॉव पे रखकर दुनिया अपनी उजाड़ी
जुआड़ी की जाति-पाँति गई सभी भाँड़ में
आज जेवर से लकदम है, कल बनी राँड़ है ।

जायगी ऐसे के साथ केवल चरित्रहीन आँख की अन्धी, जो है— शराब को गाँधी जी ने विष के समान बताया था । शराबी के द्वारा घर में मचाये गए कोहराम को दिखाते हुए कवि ने हास्य रस में दूसरे व्यग्य-गीत का सृजन किया है—

तीसरा नम्बर उनका जो चलते दारू पीकर पूरा
शाम होते तृष्णा के मारे उठती छाती में पीड़ा
उठता क्रोध जब, वह बूढ़ी से कहता पैसा देने को
रोज-रोज यह कैसा पैसा, जाऊँ क्या चोरी करने को?
या रखा है धन कमाकर, मेरे पास देने को?
क्रोध उठा बूढ़े को तो चीरा जलावन लेकर
मारा सिर पर 'लगी चोट अब तुमको' कहकर
काटा पूरा दाँत हाथ में, बूढ़ी ने भी 'बन्दर' कहकर
थके नहीं जब तक दोनों, रहे लडते आटा-चावल बिखराकर

थकने पर सो गए शाम के पहले यों ही भूखे रहकर-देखो तो-
गया बूढ़ा अस्पताल को, सुबह् विस्तर लेकर
परसों से ही खाँसी उठती, बोला बूढ़ा जाकर
कल शाम से दुखती छाती, पहले से भी बढ़कर
बात रोक देखता है बूढ़ा इधर-उधर भी डरकर ।
शराब से हुआ क्या ऐसा-पूछता डाक्टर हँसकर ।

सामाजिक बुराई को स्पष्ट रूप से दिखाने के कारण श्रोताओं में इसकी प्रतिक्रिया प्रारंभ में कैसी हुई—कवि के शब्दों में—

एक है रंगहीन बैल तो, दूसरा अनेक रंगोंवाला
"पीओ मत दारू अधिक" कहने से नाक फुलानेवाला
'ऐसा व्यर्थ भाषण'—कहकर आना भी उसने छोड़ दिया
झ्याउरे गीत में समझाने पर, और भी वह क्रोधित हुआ
बुरी चीज़ छोड़ने कहने पर, अच्छी को भी छोड़ दिया ।

मित्रसेन ने किसी का अपमान नहीं किया बल्कि समाज के भले के लिए ही उक्त गीतों को रचकर वे गाया करते थे । अपने मन्तव्य को प्रकट करते हुए कवि लिखता है और विनती करता है—

सन्तान के लिए हमें, अभी से सोचना चाहिए
उनके कल्याण के लिए, धन-सग्रह करना चाहिए
कोई युक्ति करें हम, उनके निर्माण के लिए
खुशी के साथ मरें हम, उनके उत्थान के लिए—
दोनों हाथ जोड़कर मैं फिर विनती करता हूँ
मान लें विनती मेरी, कहकर शरण में आता हूँ
इस अमूल्य विनती को, बीज की तरह बोकर
मरना हो तो मर जाऊँगा, झ्याउरे लय में गाकर
हे भाई, मित्र की इस विनती को न नष्ट करो उपेक्षाकर ।

उस समय हमारे अशिक्षित और निर्धन समाज में नारी की कैसी दुर्गति थी, कवि का वृद्ध दूल्हा इस बात की साक्षी देता ह—

अज्ञानी बने हम, बदनाम हुए, अशिक्षा के कारण ही
मुश्किल से पन्द्रह वर्ष की कन्या, साठ वर्ष का दूल्हा
श्वेत केश रँगाकर आया, शादी करने बूढ़ा

टेढ़ी कमर का बूढ़ा आया घोड़ा चढ़कर, बहुत प्रसन्न हो
बूढ़े बराती हैं और बूढ़े बजाते बाजा मगन हो
घोड़े से उतर बूढ़े ने थामी बाँस की लाठी, देखो तो

देखने आई औरत छि-छि करती 'बूढ़ा' कहकर
क्रोध से पिनकता बूढ़ा उनकी बातें सुनकर
हाय बेचारी कन्या, सुनती सब सिर झुकाकर
कराते जग हँसाई माता-पिता लोभ में पड़कर
अपना सुख देखा बाबू ने मेरा सुख गँवाकर, देखो तो

बूढ़ा गया परलोक एक वर्ष के बाद ही
हाय बेचारी लड़की की जिन्दगी सारी बिगाड़ी
डाल भँवर के दुःख में सबने उसको दिया बिसार
पाकर उसको कुटनी ने दिया दूसरा जाल पसार
सिर मुड़ा गेरूआ पट देकर ले गई देश के पार, देखो तो

चिकनी-चुपड़ी, रंग-विरंगी बातें उसे सुनाकर
चारो धाम का तीर्थ कराने, ले गई शिष्या बनाकर
गुंडे से पहले की बातें, जब आई परदेश
दो-चार मुट्ठी रूपये में दिया धर्म को बेच
इसी तरह धोखा खाकर, कितनी लड़की बिगड़ी, देखो तो

अज्ञानी बने हम, बदनाम हुए, अशिक्षा के कारण ही क्या हुजुर? समाज को बनाने या बिगाड़ने में स्वयं नारी की बहुत बड़ी जिम्मेदारी या भूमिका होती है । नारी वर्ग को कुछ शिक्षा की बातें समझाते हुए कवि ने एक लम्बा गीत झ्याउरे लय में ही लिखा है । कुछ अंश—

ए बहन, ध्यान से सुनो, दो-चार बातें मैं सुनाता हूँ
औरत जाति द्वारा किया जानेवाला धर्म मैं बताता हूँ
झ्याउरे लय में गीत गाकर सभी को समझाता हूँ
जाति-समाज सुधारने हेतु कर्त्तव्य की याद दिलाता हूँ

मान जाओगी न? कहकर विनती मैं करता हूँ
रखकर विश्वास मन में मै, चरण आपका धरता हूँ

चाल-चलन को रखकर ठीक रहें अपने घर में
बनकर नारी पतिव्रता, सही कर्म करते रहें
बोलें मीठे वचन, यही है गुण का मर्म
सन्तान का रखें ख्याल, धारण करे गृहस्थ धर्म
पति की सेवा करने में न मानें थोड़ी भी शर्म,

प्रेम से सबको समझाओ, प्रेम से रिझाओ
घर में आए अतिथि के मन को मत दुखाओ
दीन-हीन, दुखियों के ऊपर दया सदा दिखाओ
कष्ट-पीर, दुःख के समय को शान्ति से बिताओ
सच्चा धर्म, सादगीयुक्त कर्म को कभी न भुलाओ,

है आपके हाथ ही बनाना और बिगाड़ना
विद्या पढ़ाकर बालक की, आँखों को खोलना
सन्तान को योग्य बनाकर, देश-जाति बनाना
टूटे को जोड़ना और बिगड़े को सुधारना
यही है तुम्हारा नारी-धर्म, मन में खूब बिचारो
ए बहन, ध्यान से सुनो, दो-चार बातें में सुनाता हूँ

तन-मन-धन अर्पित करने की भावना से समाज सेवा करनेवाले को समाज क्या देता है?—विष, फाँसी और गोली। यह सदा से चला आ रहा समाज का दस्तूर है। सुकरात, ईसा एवं महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों को समाज सह नहीं सका, तब भला मित्रसेन के सेवा-त्याग को कौन गिनता ? कुत्ते की पूँछ को बारह वर्षों तक नली के अन्दर रखी लेकिन निकालने पर टेढ़ी की टेढ़ी—ऐसी ही स्थिति थी। कितनी कोशिश करने पर भी समाज में इच्छित परिवर्तन ला सकने में असमर्थ देखकर तथा इसके विपरीत निन्दकों के द्वारा निर्दयतापूर्वक यंत्रणा पाकर कवि ने एक जगह गजल की शैली में

अपने हृदय के दुख को इस प्रकार व्यक्त किया है–

भक्त हैं हम अपनी जाति के, मेरी विनती को व्यर्थ न करो
चोट लगे इस दुःखी हृदय को, नमक छीट बेहाल मत करो ।
समझा जबसे जाति-धर्म को, जाति प्रेम में योगी बन गए
अलख जगाता हूँ मैं, भिक्षु कह बदनाम मत करो ।
मत दुखाओ मन, दुखा है यह तो, चिन्ता-शोक से रक्त सूखा है
न छेड़ो जानकर निर्बल, विवश जानकर हँसी मत करो ।
रहता समय न सदा एक-सा, बीता हुआ न वापस आता
न मिलता वक्त पर ऐसा सेवक, मेरी विनती टाला न करो ।
आशा थी कि दया करोगे, पर मिली निराशा मुझे सदा ही
अब जीना इतना तक ही है, मेरी अकाल मृत्यु न करो ।
जाति प्रेम है मेरे हृदय में, कब आयेगी जागृति जाति में
मैं अविरल रोया करता हूँ, सोते जब सब सुख से रात में
हे प्रभु, कैसा समय यह आया, होते सभी उपेक्षित अपयश पा
हे मित्र अब शान्त हो शीघ्र, छोड़ माया-जाल बवाल न करो ।

उक्त ग़ज़ल में मित्रसेन के दिल का दुःख, दर्द और निराशा अत्यधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है । लेकिन, कवि की इस अभिव्यक्ति को क्षणिक उद्‌गार-मात्र ही मानना चाहिए । मित्रसेन ने संसार के विभिन्न धर्मावलम्बी समाज का अध्ययन किया था । मुसलमान लोग प्रत्येक शुक्रवार को (जुमे के दिन) एकत्र होकर नमाज पढ़ते हैं, ईसाई सिख और आर्यसमाजी समुदाय की भी प्रत्येक सप्ताह सामूहिक प्रार्थना-सभा होती है । लेकिन सनातन-धर्म के अनुयायी या तो घर में शाम-सुबह पूजा-अर्चना करते हैं या किसी पर्व-त्योहार में किसी स्थान में एकत्र होकर धार्मिक उत्सव मनाते हैं । ऐसा विचार करके मित्रसेन ने अपने परममित्र बहादुर सिंह बराल के सहयोग-सहायता से भागसू में साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम को प्रारंभ करने का प्रयास किया । एक घंटे के रसपूर्ण संगीतमय सत्संग कार्यक्रम में सामूहिक भजन प्रार्थना के साथ-साथ छोटे-मोटे प्रवचन का भी

प्रावधान होता था। भजन-स्तोत्र आदि के कुछ अंशों को यहाँ प्रस्तुत करना अच्छा होगा–

जय-जय गणपति, पर्वत का नाती, जय गणनाथ गणेश
सब पर रखते कृपा आप और दूर कर देते क्लेश
विघ्नहर्त्ता कहते हैं आपको, गजमुख, गणपति नाम
आपको पैर पर सिर नवाकर, प्रारंभ करते हैं काम ।।

(गणेशवन्दना - 24 पंक्ति से)
राग शुद्ध कल्याण, ताल कहरवा

हाथ में वीणा, पीठ में मोर, ऐसा सुन्दर रूप बनाया
भक्त पर रखकर सहज स्नेह, विद्या से भरपूर किया
ऐसी माँ महासरस्वती के पैर पर रख शीश
है विनती तेरे चरणो की पाऊँ कृपा-आशीष ।।

(सरस्वती-स्मृति : 8 पंक्ति से)

जिसकी आँखे तीन और हाथ में त्रिशूल ले विशाल
करते भक्त की रक्षा स्वयं ही, हर्षित हो कृपालु
कहीं भागसूनाथ, कहीं विश्वनाथ, नेपाल में हो पशुपति
ऐसे हैं त्रिलोकीनाथ, जहाँ तहाँ करते हैं प्रसन्न अति ।।

(शिव उपासना-8 पंक्तियों से)

पहन मुँदरी कान में, हाथ में त्रिशूल, भस्म शरीर में
अपने भक्त की जय मनाने, बसे गोरखा शरीर में
बल-पौरुष और विद्या-बुद्धि से, सबको कर भरपूर
वज्र-सी बनाई देह गुरू ने, रण में किया अन्त शूर ।।

(गुरु गोरखनाथ की स्तुति-8 पंक्तियों से)

ओंकार नाम का जाप (96 पंक्तियों में से)

ओम नाम ओंकार अटल है, ओम श्रेष्ठ है नाम
ओम-ओम हरि ओम, प्रभु को, है सहस्र प्रणाम
पढ़कर विद्या सभी लोग फिर ज्ञान से भरपूर हों
उद्योग कर, पौरूषवान बने बुरी आदत सब दूर हो
सबका दुःख मिटाकर ईश्वर, करे सुख प्रदान
ओम ओम हरि ओम, प्रभु को है सहस्र प्रणाम ।।

सत्संग में बैठ हम, धर्म की राह पर चलना जानें
सत्य-असत्य के भेद को सहज ज्ञान से पहचाने
बचकर चलें कुकर्म से और रखें प्रभु में ध्यान
ओम-ओम हरि ओम, प्रभु को है सहस्र प्रणाम ।।

शम, दम, तप और क्षमा धीरता, ब्रह्मचर्य को कर धारण
अच्छे कार्य और ज्ञान ध्यान में होकर अति प्रवीण
मेरी बुद्धि बल-पौरुष का हो जग में अति नाम
ओम ओम हरि ओम, प्रभु को है सहस्र प्रणाम ।।

आजीवन हे भगवान हम पालन धर्म का करे-करायें
आपकी भक्ति रखने हेतु बढ़कर आगे शक्ति बढ़ायें
अन्त समय तक हमसे हरदम होते रहे शुभकाम
ओम ओम हरि ओम, प्रभु को है सहस्र प्रणाम ।।

आरती (14 पंक्तियों में से)

जय जगपति स्वामी आप हैं अन्तर्यामी
शरण पड़े हम ओम, जय जगपति स्वामी
ध्यान आपका किया जिसने मन में निश्चय करके
उसके हित के लिए सदा ही, आए आगे बढ़के ।।

माता-पिता सभी हैं आप ही, नहीं और कोई मेरा
केवल आप अटल हैं प्रभु जी, रहा न कोई मेरा
मैं बालक बलहीन, प्रभुजी आप बहुत बलवान
अपने ढिग रख मुझे सदा दे राह दिखा भगवान ।।

(शुद्ध कल्याण, कहरवा)

बालक-बालिकाओं और महिलाओं ने मित्रसेन के उक्त साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम को सफल बनाने में बहुत सहयोग प्रदान किया । प्रायः रविवार के दिन यह कार्यक्रम रखा जाता था, सिर्फ एक घंटे के लिए-सरस संगीतमय सत्संग के इस छोटे-मीठे कार्यक्रम से बहुत-सारे परिवारों को लाभ पहुँचते देख मित्रसेन एकदम सन्तुष्ट न हो गये थे । अतः प्राणत्याग करते समय पुत्र को अन्तिम उपदेश यही दिया था—"जहाँ तक संभव हो, सत्संग-कार्य को चलाये रखना ।" कवि के देहावसान के बाद पुत्र दिग्विजय सेन ने कुछ वर्षों तक सत्संग-प्रचार के कार्य को चलाये रखा लेकिन कुछ पारिवारिक और आर्थिक परिस्थिति के कारण यह कार्यक्रम समाप्त हो गया । दादा ने सत्संग प्रचारिणी सभा को पुनः सुचारु रूप से संचालित करने का प्रयास किया लेकिन वह प्रयास भी सफल न हुआ । जो भी हो, मित्रसेन ने यावज्जीवन इस दिशा में जितनी कोशिश की, उसका वास्तविक प्रभाव समाज पर पड़ गया । बहुत सारे परिवार सुधर गए । आज भी कवि के परिश्रम का फल थोड़ा बहुत हम सभी चख रहे हैं ।

मित्रसेन अपने समय के प्रसिद्ध एवं जनप्रिय गायक थे । शास्त्रीय संगीत में निपुण होने के कारण वे अपनी रचनाओं को अथवा अपने मित्र कवि बहादुर सिंह बराल के कुछ भजन गीतों को सुर-लय प्रदान करके गाया करते थे । उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के रागों में भूपाली, शुद्धकल्याण, विहाग, बहार, आशा, भैरवी, रामेश्वरी, काफी, दरबारी, मालकोंश, भीमपलासी, दुर्गा, देश, बिलावलठाट, यमन आदि और तालों में तीन ताल, कहरवा, खेमटा, दादरा, दीपचन्दी आदि यहाँ उल्लेखनीय हैं । उनके द्वारा गाये ग्रामोफोन रिकॉर्डों ने उस समय गोरखाली जगत में खूब धूम मचा

दी थी । सन् 1936 के अन्त में उनका पहला रिकॉर्ड झ्आउरे लय में 'अब तो जाओ गोरी घर, रास्ता है उबड़-खाबड़' है और आखिरी "छाता-टोपी लगाकर, खुकुरी चमकाकर सिपाही पहुँचा युद्ध में, बैरी से लड़ने को" है जो कवि की मृत्यु के कुछ माह पहले (1945 मे) बना था । उक्त नौ-दस वर्षों के दौरान मित्रसेन द्वारा ग्रामोफोन में गाए गए बहुत सारे गीत-भजनों से कुछ अंश—

हे ज्येष्ठ साला, तेरी बहन ने मुझे मरणासन्न कर दिया
धरती भीतर कच्चू होता ऊपर होता पत्ता ताज़ा
औरत से प्रेम करने से, कान पकड़ता बाबा
पास के घर में खस्सी कटा, खींची गई कलेजी
तेरा दुलहा लहसुन-सा बौना था सूखा साग बेचता जी ।

और रिकॉर्ड के दूसरी ओर है—

कुसुम रंग मे साड़ी को रंगाकर, देखते क्यों हो आर पार
साड़ी को भूमि में लताड़कर—

शुरू-शुरू में मित्रसेन मात्र मनोरंजन के लिए कुछ हास्यरस के गीतों को झ्याउरे लय में सुनाया करते थे, लेकिन बाद में वे तरह-तरह की सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक विधाओं के गीत भजनादि गाने लगे । जैसे—

कृष्णा-गोपी जैसी होली, आओ खेलने को गोरी
अबीर की थाली में इत्र, रंग से भर पिचकारी ।
(भैरवी, कहरवा)

इसी प्रकार 'श्याम ने चोरी से माखन क्यों खाया', 'गोकुल में मुरली बजाकर चकित कर दिया', 'हे कृष्ण, तुम क्यों नहीं आए' एवं 'कृष्ण मुरारी सुदर्शन धारी, मुरली बजानेवाले तुम कहाँ हो' इत्यादि कृष्ण लीला सम्बन्धी उनके द्वारा गाए गीतों के रिकॉर्ड आज भी रसिकों में उतने ही लोकप्रिय हैं ।

आपस में मारपीट न कर प्रेम पूर्वक ससार में जीवन बिताना ही कर्त्तव्य है, इस बात को बताते हुए मित्रसेन गाते हैं—

क्यों करते हो तानातानी, है दो दिन की ज़िन्दगानी
मिट्टी की यह देह बनी है, हुए हो पापकर्म से पैदा

इसको अच्छा क्यों कहते हो, है पत्ते पर का पानी
ले जायेगी हवा उड़ाकर–

(शुद्ध कल्याण, कहरवा)

जीवन के लक्ष्य को भूलकर मौज़-मस्ती में लिप्त मनुष्य को जगाने के उद्‌देश्य से वे सुनाते है–

रस-रंग में भूल गए, तुम कैसा कलंकी भौरा-सा
क्यो फूलों में तुम मस्त हुए, घुम फलों के तुम आस-पास
नशे में माते पागल से, रस-रंग में तुम भूल गए ।

(शुद्ध कल्याण, कहरवा)

मनुष्य का चोला पाकर हमें क्या करना है, यह याद दिलाते हुए वे गाते हैं–

न मिलेगा जन्म बारम्बार, करते जाओ जग का उपकार
अच्छे-बुरे को जान-समझ, करो अपने जीवन का सुधार
देश की सेवा, प्रभु की भक्ति, गुणियों का कर सत्कार
जो गुणों का संग्रह करता, सहज पहुँचता पार
यश-कीर्त्ति फैलाते जाओ, यही है जीवन का सार ।

(शुद्ध कल्याण, तीन ताल)

उक्त गीतों के अलावा उनके कुछ अन्य रिकॉर्ड गीत-भजन हैं– 'बिहान हुआ अब उठ हे साथी', 'रखें हुजूर का ध्यान आज हे अम्बे भवानी', 'धन्य पशुपति जगत का स्वामी', 'जन्म हुआ जहाँ पुरखे का', 'संसार में श्रेष्ठ हे उच्च स्थान', 'तानसिंह आनन्दित हुआ', 'दुख से हुए बेहाल गोरखनाथ बाबा', 'हुआ बदनाम देखो भाई', 'गोरखाली जाति कभी बुद्धि की खान होती थी', 'बोल गोरखाली भाई, जय गोरख' इत्यादि ।'

दूसरे विश्वयुद्ध के समय 'विक्टोरिया क्रास' के सर्वश्रेष्ठ वीरता-सम्मान से विभूषित हमारे कुछ वीर सैनिकों की याद में मित्रसेन द्वारा रचित 'बहादुरी को झ्याउरे गीत' यहाँ उद्‌धृत करना उचित होगा–

बूटादार टोपी से सजकर, चमकाकर खुकुरी को
रेल पे चढ़के फौजी पहुँचे, दुश्मन से लड़ने को

त्याग मोह बाल-बच्चे का पत्नी औ" घर को
खोज-खोज बैरी से लड़ने, भूखे पेट ही निकला
किरीच भोंककर भी. सी. पाया, पूरा नाम कमाया
धन्य तुम्हारे माता-पिता, सूबेदार लाल बहादुर
अमलदार गँजूलामा और सिपाही तुल बहादुर
अगम सिंह राई और छेत्री शेर बहादुर
स्वर्ग पहुँचे थमन गुरूंग जो थे रण के बहादुर
धन्य हमारा गजे घले जिसने वैरी को मारा
नेत्र बहादुर सूबेदार ने सबका दंभ उतारा
ऋण चुकाकर दूध का, सात कुलों को तारा-
धन्य तुम लक्ष्मण गुरूंग नेपाली की जो नाक
भानुभक्त वीर की है और कितनी धाक
खुकुरी देखकर वैरियों में होता भागाभाग
वीरों के टुकड़े जोड़, मित्र गाता यह राग

उक्त ग्रामोफोन रिकॉर्ड में गाए गीत-भजनों के अलावा मित्रसेन द्वारा रचित अनेकानेक कृतियाँ 'बराल के आँसू' एवं 'मित्र की डायरी' और 'कविता झ्याउरे' पुस्तकों में संग्रहित हैं । भगवान का गुणगान करते हुए कवि लिखता है—"किस तरह से ये गुण गायें, धन्य हो सृष्टि रचानेवाले ।" कीर्त्तन भजन के लय में—सब मिल गाओं, हम राम गुण गायें । "उलाहना के स्वर में—"पहले कभी क्यों न जपा हरि नाम ।" चुनौती के अन्दाज में—'सुना है, कितने को तुम तारे, मुझे तारो तब मैं जानूँ ।' समर्पण-भाव से—'जैसी हो तुम्हारी मर्जी, वैसा ही सदा रहूँगा' और दया याचना के कुछ अंश—

हे हरि, हरो कष्ट अब जल्दी ही
संकट पड़ा जब अर्जुन पर
तब बने मित्र पाण्डव के
दुःख मिटाओ 'मित्र' की इस घड़ी
हरो कष्ट अब जल्दी ही

कर्म या भाग्य के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कवि दार्शनिक अन्दाज में लिखते हैं—

युक्ति करो हज़ार परन्तु कर्म-गति है अति बलवान
भाग्य लेख न मिटता कभी, निर्धन हो या हो धनवान
किसी को पूर्ण धन-सम्पत्ति है, पर है निःसन्तान
नंगे-भूखे दीन-हीन को है बहुतों सन्तान
ज्ञानी-ध्यानी दुःख पाते हैं, झूठा-निकम्मा मान
भाग्य लेख को मिटा न सकता, अनपढ़ हो या हो विद्वान।

भाग्य-चक्र के प्रभाव से संसार में अत्यधिक विषमता है । कवि के शब्दों में—

एक पिता के दो पुत्र पर भाग्य दोनो के भिन्न
एक बना राजा पर दूसरा माँगता भिक्षा हो दीन
एक माँ को चार पुत्रियाँ, एक काली पर दूसरी गोरी
एक बन रानी मौज मनावे दूसरी दुःख से मरी
एक ही जाति का प्राणी, कोई नम्र, कोई अभिमानी
जीवित रहकर भी है 'मित्र' जो अबूझ अज्ञानी ।

असार संसार का स्मरण कराते हुए कवि ने कव्वाली के धुन में लिखा है । कुछ अंश इस प्रकार है—

जन्मा जो संसार में, कुछ क्षण बाद मरा
दुखिया भी मरा और सुखिया भी मरा
रावण जैसा वीर राजा, काल को वश में किया
कहाँ वह रावण है आज, वंश समेत मरा
झुककर दिन काटो मित्र, प्रेम से ससार में
कहता मैं देखो, कितना अहंकारी भी मरा ।

(काफी, दीपचन्दी)

कवि द्वारा रचित अन्य कव्वाली क्षणभंगुर जीवन के सम्बन्ध में—

कोई नहीं जगत में किसी का, हंस उड़ जाने के बाद
रह जायगा भला क्या बाँकी, देह जल जाने के बाद
मेरा साथी, मेरा भाई, मेरी प्यारी मोहिनी
क्षण भर रो-कराहेगी, नाड़ी डूब जाने के बाद
बातें करते-करते मित्र, बीत गई उम्र वैसे ही
अब रोकर ही क्या होगा, उम्र ढल जाने के बाद ।

गुरु हो या गुरु का शिष्य, नेता हो या उनका अनुयायी सभी अपने उचित-अनुचित कर्म के कारण ऊपर उठते हैं या नीचे गिरते हैं । कवि के शब्दों में—

यह संसार है दर्शन का मेला
अपने कर्म से तरना है, गुरु हों या हो चेला
मतलब के सब साथी-संगी, जुटते सभी सुख में
छोड़ देते सभी अकेला, दूर हट जाते दुख में
धन पाकर सुखिया-सब, दुखिया की अवहेलना करते
अन्त समय में दुखिया-सुखिया, काल के फेर में पड़ते ।

मित्रसेन द्वारा रचे या गाये प्रायः सभी गीत भजनादि में उनकी समाज-सुधार की सुन्दर भावना, समाज-सुधार का वास्तविक प्रयास एवं सरस संगीत और गीत के माध्यम से श्रोताओं को आनन्द पहुँचा सकने की प्रतिभा का हमें पता चलता है ।

नाटक

चरित्र निर्माण के लिए नाटक एक अत्यन्त प्रभावशाली विधा है । मित्रसेन ने महात्मा गाँधी की आत्म कथा से इस बात की पुष्टि पाई थी । बाल्य-काल में गाँधी जी द्वारा देखे गए दो नाटक 'श्रवणकुमार' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' ने उनके अन्तस्तल में गहरा प्रभाव डाला था । कालान्तर में उसी मातृ-पितृ भक्त बालक के द्वारा अपने चरित्र-बल से अहिंसात्मक सत्याग्रह का अनूठा अस्त्र संसार को देने की बात सर्वविदित है । अपने दिए वचन के पालन के लिए सत्यवादी हरिश्चन्द्र ने डोम का काम सहर्ष सँभाला, रानी और पुत्र को बेच दिया और चोरी के दोष में पकड़े जाने पर आदेश के अनुसार वे अपनी पत्नी तक को काटने के लिए तत्पर हो गए । कैसा उत्कृष्ट जीवन-चरित्र राजा का! यथा राजा तथा प्रजा—यदि शासकों या नेताओं में नैतिक या चारित्रिक मूल्य विद्यमान रहे तो प्रजा, जनता एवं अनुयायी भी अवश्य चरित्रवान होंगे—ऐसा विचार करके मित्रसेन ने कलापूर्ण ढंग से राजा हरिश्चन्द्र नाटक को नेपाली भाषा में लिखकर रंगमंच पर प्रस्तुत करने और प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से इसे लघु रूप में तैयार करके ग्रामोफोन रिकॉर्डिंग भी कराई ।

नारी के व्यक्तित्व के विकास से ही समाज और देश का भला हो सकता है । नारी कैसे पुरुष को अपना पति चुने? सती पार्वती के चरित्र को दिखाते हुए मित्रसेन ने अपने दूसरे नाटक 'स्वस्थानी व्रत-कथा' में रूप, धन और मान की अपेक्षा पति के नैतिक और आध्यात्मिक गुण को अधिक महत्त्व देने की बात कही है । मात्र ऐसी ही माँ गणेश के समान सर्वपूजनीय एवं कार्त्तिकेय के समान महापराक्रमी सन्तान पैदा कर सकती है । इसी प्रकार

'सत्यवान-सावित्री' नाटक में मित्रसेन ने यह दिखाया है कि कैसे नारी शुद्ध आचरण और दृढ़ इच्छाशक्ति से अपने मृत पति को काल के मुख से बचा सकती है । फिर, 'द्रौपदी चीरहरण' नाटक मे उन्होंने नारी द्वारा तप-त्याग और भक्ति के चमत्कारी प्रभाव से अत्यन्त अपमानजनक स्थिति से स्वयं को बचाने का दृश्य उपस्थित किया है । रंगमंच पर सफलतापूर्वक दिखाकर उन्होंने उक्त तीनों नाटकों की (संक्षिप्त रूप में) रिकॉर्डिंग कराई ।

ऋषि के आशीर्वाद और माँ की प्रेरणा से बालक ध्रुव ने अपनी कठोर तपस्या-साधना के द्वारा उच्च आध्यात्मिक विद्या अर्जित कर ख्याति पाई । इस कथा को लेकर मित्रसेन द्वारा 'ध्रुव' नाटक तैयार कर दिखाने के पीछे विशेष उद्देश्य हमारी बालक-बालिकाओ के हृदय में विद्या, विनय और शील उपार्जन के निमित्त कठोर परिश्रम और अविरल साधना के भाव को उजागर करने का प्रयास हो सकता है । बाल्यकाल की वैसी मित्रता से भावी जीवन में मनुष्य को कुछ लाभ अवश्य होता है—उनके द्वारा रचित 'कृष्ण-सुदामा' नाटक मे बालक-बालिका सच्चा और गुणी मित्र की खोज होशियारी के साथ करने की प्रेरणा पाते हैं । 'ध्रुव' और 'कृष्ण-सुदामा' नाटक को प्रदर्शित करने के बाद उन्होंने इन दोनों नाटकों की भी उसी प्रकार रेकर्डिंग कराई ।

रिकॉर्ड न करा सके बहुत सारे नाटकों में मित्रसेन द्वारा लिखे प्रसिद्ध नाटक हैं—'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रहलाद', 'भक्त सूरदास', 'श्रवण कुमार', 'प्रभुशक्ति' और 'कृष्ण-जन्म' इत्यादि । इन सभी नाटको में हमारे युवावर्ग एवं बालक-बालिकाओं में उत्साह, उमग, साहस, सहनशीलता, सत्यपरायणता, प्रभुभक्ति, कला-साधना, माता-पिता की सेवा, चरित्र की शुद्धता एवं न्यायप्रियता इत्यादि मानवीय मूल्यों को चरितार्थ करानेवाली सामग्री यथेष्ट मात्रा में मिलती है ।

दुर्भाग्यवश, मित्रसेन की बहुत सारी पाण्डुलिपियों के साथ-साथ उनके द्वारा जमा की गई बहुमूल्य पत्र-पत्रिका एवं पुस्तक-पुस्तिकाओं के दीमक और चूहे द्वारा खा जाने और आग में जल जाने से नष्ट

होने की बात की जानकारी उनकी धर्म पत्नी एवं पुत्र के द्वारा प्राप्त हुई । धन्यवाद है कि उनकी बीस-बाईस पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखे जाने के कारण आज मित्रसेन साहित्य की खोज पड़ताल का कार्य कुछ सरल हो गया है । उक्त छः नाटकों को रिकॉर्ड कराने से उनकी आवाज़ के साथ-साथ उक्त नाटकों की सामग्री बच गई है । उनके द्वारा रिकॉर्ड न कराये गए नाटकों में प्रसिद्धि प्राप्त कुछ नाटकों को रंगमच पर इस पंक्ति के लेखक द्वारा स्वयं देखे जाने से अथवा कुछ बुजुर्गों के साथ भेट वार्त्ता के क्रम में जानकारी प्राप्त होने के कारण इस पुस्तक में इनका उल्लेख किया गया है । सौभाग्य से, मित्रसेन का बचा एकमात्र 'कृष्ण-जन्म' नाटक की पाण्डुलिपि से हमें उनके लिखने के भाव, भाषा और शैली का कुछ परिचय प्राप्त हो सकता है ।

'कृष्ण-जन्म' नाटक में उन्होने कुल बीस दृश्य रखे हैं । इनमें सात दृश्य हास्य के हैं और नाटक के बीच-बीच में प्रार्थना, गीत, नृत्यगान, दोहा, झ्याउरे गीत—कुल बीस पद्य रचनाओं का समावेश है । लगभग बारह हज़ार शब्दों में लिखा यह नाटक लगभग तीन घंटे तक खेलने योग्य है । इस नाटक की तरह ही उन्होंने अन्य सभी नाटकों में भी गद्य-पद्य-दोनों विधाओं का प्रयोग किया है । नारद-विष्णु संवाद, कंस के दरबार में कंस-वासुदेव-नारद संवाद, आकाश-वाणी, कारागार में देवकी-वासुदेव संवाद, कृष्ण-राधा-मनसुख संवाद, गोवर्धन-पूजा कृष्ण द्वारा देवकी-वासुदेव की मुक्ति और कंस-वध इत्यादि दृश्य नाटक में प्रमुख है । नाटक के चौथे दृश्य की झाँकी, नमूने के रूप में यहाँ पेश करना बेहतर होगा—

चौथा दृश्य (कारागार में देवकी के पहले पुत्र का जन्म हुआ है । बालक को गोद में लेकर देवकी उसे प्यार कर रही है ।)

वासुदेव : (आकर) : प्रिय, देर हुई, बालक मुझे दो । वचन के अनुसार कंस के दरबार में पहुँचाना होगा ।

देवकी : प्राणनाथ!

वासुदेव : प्रिय!

देवकी : क्या हम इस बालक के माता-पिता हैं?

वासुदेव : हैं, प्रिय!

देवकी : नहीं, हम इस बालक के माता-पिता नहीं हैं, बल्कि बैरी हैं ।

वासुदेव : बैरी कैसे हुए प्रिय ।

देवकी : संसार में ऐसे माता-पिता कौन होंगे जो अपनी सन्तान को मारने के लिए दुष्ट राक्षस के हाथ मे देंगे । माता-पिता तो बालक की प्राण रक्षा के लिए प्राण तक देते है, निर्बल को बचाने के लिए सारा धन-धाम दे देते हैं । हम कायर और स्वार्थी हैं । अपने स्वार्थ के वशीभूत हो हम इस बालक को आज दे देंगे । धिक्कार है ! मृत्यु के डर से ।

वासुदेव : हा भगवान! यह कैसा दिन देखना पड़ा । एक तरफ़ वचन के कारण धर्म से च्युत होने का खतरा, दूसरी और पुत्र का प्रेम और उसकी रक्षा करने का हमारा कर्त्तव्य है । क्या करूँ!

वचन करूँ यदि पूरा, पुत्र-प्रेम को दबाना है जैसे गर्म दूध को । देखो, थूकना नहीं, निगलना है ।

देवकी : प्राणनाथ, क्या विचार हुआ!

वासुदेव : तुमने क्या विचार किया, प्रिय!

देवकी : मैंने यही विचार किया कि मैं इस बालक की रक्षा के लिए अपने प्राण को गँवा दूँगी लेकिन इस प्यारे बालक को व्याधा कंस के हाथ में कदापि न दूँगी ।

वासुदेव : लेकिन, वचन देकर पीछे हटने के समान कोई अधर्म भी तो नहीं है ।

देवकी : हाँ, स्वामी, वचन पूरा न करना भारी दोष है लेकिन बालक की रक्षा करना भी माँ का बहुत बड़ा धर्म है । स्वामी, यदि आपका विचार इस बालक को कंस के हाथ में देने का है तो पहले मेरे प्राण ले लीजिए । मैं अपने प्राण रहते अपनी सन्तान को दुष्ट

व्याधा के हाथ में कदापि नहीं दे सकती । इसे मारने के बदले, बल्कि मुझे मार दीजिए । उस कोख को ही नष्ट कीजिए जिसमें इसने जन्म लिया । मेरे मन में स्वामी, कितना दुख कष्ट छिपा है फाड़कर देखिए मेरी छाती, जहाँ यह बालक सोया है ।

वासुदेव : प्रिय, क्या करूँ, मन तो मेरा भी पीड़ित है लेकिन........

देवकी : हा, लेकिन, !......... लेकिन का यही अर्थ हुआ स्वामी कि आपने इस बालक को अवश्य दुष्ट के हाथ में देने का निश्चय कर लिया है ।

वासुदेव : वचनबद्ध होने के कारण क्या करूँ, प्रिय?

देवकी : हा प्रभु, मेरा बालक!

(ऐंठकर अचेत हो जाती है)

वासुदेव : वासुदेव, यही अवसर ठीक होगा । देवकी बेहोश होकर पड़ी है! इसी वेला भावना को दबाकर बालक को ले जाना होगा । (बालक को उठाकर)

हा, सुकुमार बालक, तुम्हें क्या पता है कि कुछ क्षण के बाद दुष्ट कंस तुम्हारी हत्या कर देगा । प्रभु, क्या करूँ! देवकी कुछ क्षण बाद उठेगी । उस समय बालक न मिलने पर क्या दशा होगी उसकी! हे निर्दयी वासुदेव! तेरा क्या कर्त्तव्य है! जा, जा, छाती पर पत्थर रखकर बालक को ले जा!

(धीरे-धीरे देवकी को देखते हुए जाते हैं)

(पर्दा गिरता है)

बहन और बहनोई को वर्षों कारागार में बन्द रखनेवाला और उनकी सन्तान को पैदा होते ही एक-एक कर मार देनेवाला दुष्ट राजा कंस का अत्याचार अपनी प्रजा पर किस तरह का होता होगा । पहला पुत्र कंस के हाथ में सौपते समय देवकी और कंस की मनोदशा तथा मानसिक बेचैनी को मित्रसेन ने उक्त दृश्य में दिखाने का प्रयास

किया है । कंस को राज्य में दुख-कष्ट, दुराचार, शोषण और अन्याय के बढ़ने का समाचार नारद से सुनकर भगवान विष्णु उत्तर देते हैं । नाटक के पहले दृश्य में—लेना पड़ेगा मुझे अवतार, जिस तरह बढ़ता पृथ्वी में पाप कर संहार दुष्ट का मैं, हरूँगा सारा दुःख-सन्ताप, कहना न होगा कि कारागार के अन्दर महाशक्ति के रूप में भगवान कृष्ण का जन्म होता है । अफ्रीका में रहकर गाँधी जी ने अहिंसा सत्याग्रह का प्रयोग करते हुए जेल के महत्त्व को समझा था । जब तक सत्याग्रही जेल की हवा न खायगा, उसमें अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करते रहने की ताकत पैदा नहीं होगी । भारत वापस आने के बाद स्वतंत्रता-संग्राम का संचालन करते हुए उन्होंने देशभक्त आन्दोलनकारियों के जेल जाने की अनिवार्यता के बारे में बताया और बन्दी जीवन के भय और लज्जा से उन्हें मुक्त करके कर्मठ शक्तिशाली योद्धा बनाया । जेल की अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले असंख्य क्रान्तिकारी वीरों के कष्ट सहन, त्याग और बलिदान की भावना से ही देश आज़ाद हो सकता है—इस बात में शायद दो मत नहीं होंगे । महात्मा गाँधी के आन्तरिक भाव को समझकर मित्रसेन ने कृष्ण-जन्म नाटक का सृजन कर जन-जन में कारागार के महत्त्व को समझाने का काम किया जो शायद युक्तिसंगत ही था । अन्याय और अत्याचार का सामना करने की इच्छा रखनेवाले देशभक्त और समाजप्रेमी वीरों के लिए कारागार ही पवित्र धाम है, पावन तीर्थस्थल है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर सदा के लिए इसे ज्ञान, शक्ति और प्रेरणा के स्रोत के समान बना दिया है ।

नाटक के रचयिता, निर्देशक, अभिनेता, संगीत निर्देशक, हार्मोनियमवादक, गायक, नृत्य निर्देशक एवं पर्दा बनानेवाले चित्रकार के रूप में अनुभवी मास्टर मित्रसेन

ने अत्यधिक ख्याति अर्जित की थी । किसी स्थान में अकेले स्थानीय कलाकारों को तैयार करके सफलतापूर्वक नाटक का सिलसिला बैठा पाने की प्रतिभा और सामर्थ्य उनमें थी । मित्रसेन प्रायः भागसू, बक्लोह, एबटाबाद, देहरादून और शिलांग के फ़ौजियों के बीच तथा फ़ौजियों के आस-पास बसी गोरखाली बस्तियों मे जाया करते थे और सभी के सहयोग और सहायता से उन्हें विभिन्न नाटक दिखाया करते थे । उक्त प्रत्येक नाटक में वे बीच-बीच में हास्य-दृश्यों को प्रचुर मात्रा में स्थान देते थे । प्रमुख दृश्य की तैयारी करने के लिए यह आवश्यक भी था । लेकिन, उन हास्यों में वे सामाजिक कुरीतियों को दिखाना चाहते थे । हास्य दृश्य की भाषा उस समय के अशिक्षित समाज के अनुरूप थोड़ी भ्रष्ट तरह की होती थी । हास्य-दृश्य के लिए प्रायः दूसरे नम्बर के पर्दे (गली का दृश्य) का प्रयोग करते थे । कुल पाँच प्रकार के पर्दे का वे उपयोग करते थे—फ्रंट सीन (यवनिका या सामने का दृश्य), गली का दृश्य, सादा पर्दा, जंगल का दृश्य और दरबार का दृश्य । हास्य-दृश्य की कुछ झाँकी उक्त नाटक से यहाँ उदृधृत है—

तीसरा दृश्य (लुथरे का घर । लुथरे रोता हुआ आता है)

लुथरे : ओ बाबा, मैं कहाँ जाकर मरूँ ! धन-सम्पत्ति होने से क्या करूँ! पत्नी अच्छी होने से भी होगा । कमर पर चीरे हुए जलावन से प्रहार करके राँड़ ने जोड़ की हड्डी खिसका दी और चलने-हिलने लायक भी न रहने दिया । मुझे तो किसी लायक नहीं गिनती । बेटे के रहते हुए बुढ़ापा में दूसरा विवाह करने का यह फल पा रहा हूँ ।

(स्वयं को ठेंगा दिखाते हुए)

ला लुथरे अपनी अक्ल! मुश्किल से यह चोट मिली । मन्सुख, ए मन्सुख (पुत्र को पुकारता है)

मन्सुख : (आकर) जी हाँ ।

लुथरे : मेरी कमर दबा दो बेटा, बहुत दुखता है ।

मन्सुख : क्या हुआ कमर में?

लुथरे : क्या हुआ है, जानते नहीं, उसी राँड़ ने...........

सुन्तोली : (प्रवेश करके) ऊँ, बेटे के साथ दुःख मनाया जा रहा है..........

(मन्सुख भाग जाता है, लुथरे डर से काँपते हुए सुन्तोली को देखता है)

लुथरे : क्या करूँ तब, तुमने भी तो डंडे से तोड़ दिया है तो! अइया, मर गया मैं!

सुन्तोली : (खींचकर) हट, झूठा, कुछ भी नहीं हुआ है । काम करना होगा, इसलिए बहाना बनाया है फटहा बूढ़ा ! चुपचाप पानी लाने जाओ! सभी घड़े और मटके खाली हो गए हैं । एक बूँद पानी नहीं है, मै कैसे भोजन पकाऊँगी?

लुथरे : छिः, तुम ऐसा करती हो तो मुझे रोने का मन होता है ।

सुन्तोली : थूः, अभी दारू का गिलास मिल जायगा तो उछलते हुए जाओगे ।

लुथरे : (हँसते हुए) ही, ही, ही, है तो दो न छोटी रानी, एक ही घूँट! गाय खाऊँ जो मैं सभी मटके को सकने या न सकने पर भी भर न दूँ ।

सुन्तोली : (ठेंगा दिखाकर) लो, पीओ दारू । नौकर-चाकर कोई है नहीं । दिन भर व्यर्थ घर-घर घूमना, ताश-चौसर और जुए में दिन काटना और चौबीस घंटा नशे में डोलते रहना । यही है मर्द का काम । शाबास, तुम्हारे जैसे लोग ही संसार में जाति का नाम बदनाम कराते घूमते हैं । (घड़ा लाकर) जाते हो कि नहीं पानी लाने । (चीरे हुए जलावन से मारना चाहती है)

दो वर्ष पहले ठाकुर चन्दन सिंह, खड्ग बहादुर सिंह विष्ट

एवं दुर्गामिल्ल इत्यादि देशभक्तों के सम्बन्ध में कुछ खोज-सामग्री उपलब्ध करने के इरादे से देहरादून जाते हुए नेहरूग्राम निवासी वल्लभ परिवार से मित्रसेन के 'प्रभुभक्ति' नाटक मे प्रयुक्त 12 पृष्ठों की गीत संकलन पुस्तिका (1940 में प्रकाशित) की एक प्रति हस्तगत हुई । इसकी भूमिका में पुस्तिका-प्रकाशक पं. वेद वल्लभ जी ने लिखा है— "नेपाली भाषा के प्रसिद्ध मास्टर मित्रसेन द्वारा लिखित तथा मंचित इस नाटक (प्रभुभक्ति) में भी भाषा प्रकार के अलावा जाति की भलाई के लिए अनेकानेक धर्मोपदेश की बातें रूचिकर ढंग से रखी गई है । हम मित्रसेन जी के कृतज्ञ हैं । संक्षेप में उक्त नाटक का परिचय देते हुए उन्होने लिखा है—"उस सतयुग में महाराज नागभाग के ज्येष्ठ पुत्र अम्बरीष बहुत ईश्वर भक्त थे । तपस्वी दुर्वासा के क्रोध-द्वेष के कारण अम्बरीष को अत्यधिक दुःख कष्ट भोगना पड़ा और अन्त में अम्बरीष को भस्म करने के लिए उन्होंने दिव्य अग्नि को प्रज्ज्वलित किया लेकिन उसी अग्नि से सुदर्शन चक्र निकलकर दुर्वासा को खदेड़ने लगा । ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी उनकी रक्षा करने में असमर्थ हो गए । आखिर, वे हार मानकर अम्बरीष के पास गए और क्षमा याचना की । खेल (नाटक) दर्शाता है कि ईर्ष्या-द्वेष करनेवाले अभिमानी की अन्त में पराजय होती है और प्रभुभक्त प्रेमी की जय!" उक्त पुस्तिका में सकलित 28 गीत-भजनादि में दो-चार के कुछ अंश यहाँ उद्धृत है—

भजन-प्रार्थना (अम्बरीष द्वारा)

मुझे बिराना न समझो प्रभु, न तुम हो भिन्न,
न मैं हूँ भिन्न जो तुम हो, वही मैं भी हूँ प्रभु
न तुम हो भिन्न, न मैं हूँ भिन्न
तुम गोपाल हो, मैं चरवाहा, तुम चाभी हो मैं ताला ।
तुम राममंत्र हो, मैं माला, न तुम भिन्न, न मैं हूँ भिन्न ।

(राग-भैरवी, ताल कहरवा)

दूसरा भजन—

हरि-राम-चरण चित्त लाओ
उनके शरण में जाओ
मधुर मधुर गुण गाओ
न भूलो मित्र ।
इस माया के अन्दर
जगत है विचित्र ।
ध्यान भजन में जमाओ
हरि-राम-चरण चित्त लाओ ।

(शुद्ध कल्याण, कहरवा)

और दूसरा भजन (नृत्य-गान)

आदि भवानी जय जग जननी माता दुर्गे
संकट हरणी, अन्न-धन भरणी, माता दुर्गे
चण्डी चामुण्डा, तुम भैरवी शक्ति
सभी चराचर को देती तुम मुक्ति
त्राहि त्राहि हे महा मातेश्वरी
निर्बल 'मित्र' को तारनहारी ।

(भूपाली, तीन ताल).

हास्य-गीत (नास्तिक घण्टाकरण का)

सबसे बढ़कर दाम जगत मे, सबसे बढ़कर दाम
जिसके पास दाम नहीं उसका, लेता न कोई नाम
दीन-हीन और तुच्छ जीव भी, धन से पाता मान
काना-अन्धा, टेढ़ा भी पाता है सम्मान
शठ-साधु और दीन-भिखारी, बन जाते प्रधान
धन से फूस की झोपड़ी भी, बनती महल समान
जिसके पास दाम नहीं है, होता वह बदनाम
जगत में सबसे बढ़कर दाम ।

(राग विहार, कहरवा ताल)

और अन्य हास्य गीत (घर के नौकर का)
देखो, पेट की आग ने मारा मुझे
कभी ख़ाली हाथ, कभी मुक्का-लात
न भात, न सात, वैसे ही जीभ चलाई
कभी यहां आओ, कभी वहाँ जाओ
कभी मार खाओ, कहें दुख किससे
पेट की आग ने, मारा मुझे ।

(विहाग, दादरा)

सन् 1926 से 1932 के दौरान उर्दू हिन्दी के नाटक-प्रदर्शन के अनुभव से समृद्ध होकर मित्रसेन ने 1936 से 1945 तक की अवधि में नेपाली भाषा में अनेकानेक नाटकों को लिखकर रंगमंच पर दिखाया और ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड भी तैयार कराया । इन नाटकों के माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में तथा तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर समाजोत्थान या समाज सुधार के कार्य में बहुत बड़ा योगदान किया । कथा-वाचन अथवा गीत-भजन के कार्यक्रमों की अपेक्षा उन्हें नाटक प्रदर्शन से विशेष सन्तुष्टि प्राप्त होती थी । यही क्यों, इसके द्वारा वे गायन, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि कला के सभी अंगों की अभिव्यक्ति कर पाते थे । साथ ही, आँख से देखने तथा कान से सुनने के कारण जन-जन के मन पर गहरी छाप डालने का सही माध्यम नाटक है, ऐसा उनका दृढ़ आस्था-विश्वास था । बहुत परिश्रम करके वे प्रत्येक नाटक के प्रत्येक दृश्य के प्रभावशाली बनाने का प्रयास करते थे । किसी नाटक को लिखने के लिए उन्हें दो महीने के समय की आवश्यकता थी । लिखने के बाद रिहर्सल करके उसे रंगमंच पर उतारने तक के दो महीने में वे दिन रात मेहनत करते थे । यही उनकी सफलता और ख्याति का रहस्य था । नाटक-प्रदर्शन के द्वारा बालक-बालिका के चरित्र निर्माण करने की युवावर्ग में उत्साह और साहस भरने की तथा नारी समाज को सीधा मार्ग दिखाने की आकांक्षा या प्रयास मित्रसेन का था ।

निबन्ध

गायक, नाटककार और धर्मोपदेशक के रूप में बहुत यश-सम्मान अर्जित करने के बाद मित्रसेन ने प्रचार-भ्रमण के दौरान सन् 1940 साल में देहरादून में रहकर पहली निबन्ध पुस्तिका 'हित की बातें' लिखकर तैयार की और 1941 में स्वयं रुग्णावस्था में रहकर भी बिस्तर पर लेटे-लेटे 'उन्नति की चाभी' नामक दूसरी निबन्ध पुस्तिका लिखी । उनके द्वारा रचित 'गहरी खोज' (निबन्ध माला), 'मित्रसेन की डायरी' और 'रीड़ी तीर्थस्थल' का रचना काल 1944 है जबकि वे अपने अन्तिम प्रचार-भ्रमण के सिलसिले मे नौतूना, गोरखपुर आदि स्थानों में गये थे ।

'हित की बातें' की भूमिका में वे लिखते है—"देहरादून में हुए धर्मोपदेश को लिखकर छापना पड़ेगा, ऐसा अनुरोध यहाँ के अनेक प्रेमी भाइयों ने किया है । इसीलिए, सबके हित के लिए यह छोटी पुस्तक 'हित की बातें' सेवा में समर्पित कर रहा हूँ । इस पुस्तिका (अप्रकाशित) में 'कृतज्ञता,' 'अभिमान-निषेध' और 'प्रेम' शीर्षक से तीन बड़े-बड़े लेख हैं—लगभग दस हज़ार शब्दों में । उक्त प्रत्येक निबन्ध में लेखक ने विषय के प्रसंग को अच्छी तरह समझाने के लिए तरह-तरह की लघुकथा, कवितादि का समावेश किया है । परिचय के लिए 'कृतज्ञता' लेख (दो हज़ार शब्द) का संक्षिप्त नमूना यहाँ उद्धृत करना अच्छा होगा—

'हे मित्र, अपने ऊपर उपकार करनेवाले के उपकार को कभी मत भूलो, सदा कृतज्ञ बने रहो । परमात्मा ने हमें यह अमूल्य मनुष्य-देह प्रदान की है । प्रकृति ने सूर्य, चन्द्र और अनगिनत तारों को उत्पन्न करके संसार को सजाया है । नाना तरह के फल-फूल

और अन्न-धन से इसे सुसम्पन्न किया है । बर्फ़-हवा, नदी-नाला, झरना-पर्वत, वन-उपवन, पशु-पक्षी-इन सभी का हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है । अतएव, प्राण रहते हुए शक्तिभर थोड़ा-बहुत परोपकार का कार्य करते रहने से ही हम अपने ऊपर किए गए अनेकानेक उपकार का बदला चुका सकते हैं या ऋणमुक्त हो सकते हैं । यही वास्तविक कृतज्ञता जताना है । कृतज्ञ मनुष्य आकाश में छाए बादल की तरह है ।

पृथ्वी पर अमृत जल बरसाकर वह सुख-समृद्धि की वृद्धि करता है । इसके विपरीत, कृतघ्न का हृदय केवल बालू से परिपूर्ण मरूभूमि के समान होता है । स्वार्थ, लोभ और अभिमान के कारण ऐसा मनुष्य संसार के सारे मान-सम्मान या धन-वैभव को समेटकर सोखकर-चूसकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगा रहता है । सदा संसार के उपकार की ओर मन लगानेवाला और अपने उपकारकर्त्ता को कभी न भूलनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोक में शान्ति अर्जित करता है...........हम कई-कई बार उपकार के किसी कार्य से हत्यारा डाकू तक के मन में गहरा प्रभाव उत्पन्न कर सकने की कहानी सुनते आए हैं । ऐसी ही एक कथा मसूद (पठान) डाकू की सुनी थी । (संक्षेप में)–

पठानों के मुल्क में काम करनेवाला एक खजांची (सन्तराम) एक दिन अधिक काम होने के कारण थोड़ी रात गये घर वापस जा रहा था । रास्ते में अवसर की ताक में बैठा मसूद डाकू के हाथ मे वह पड़ गया । मसूद बन्दूक़ की नली उसकी छाती मे सटाते हुए बोलता है–'तेरे पास जितना रुपया है, यहाँ रख दो और मरने के लिए तैयार हो जाओ । तुम्हारी कोई अन्तिम इच्छा हो तो वह भी बोलो, मैं अवश्य पूरी करूँगा । "सन्तराम कहता है–'मेरे बड़े भाई को मेरे मरने की ख़बर पहुँचवाने की रस्म कर देना क्योंकि उन्हें मेरी पत्नी तथा बाल-बच्चे की देखरेख करनी होगी । नाम पता ? वे डेरा इस्माइल खाँ में डाक्टरी की दूकान करते हैं । नाम है मंगूलाल ।" मंगूलाल का नाम सुनकर वह कठोर हृदय पठान थर-थर काँपने लगा, बन्दूक को नीचे रखकर बार-बार अपनी नाक को ज़मीन

में रगड़ने लगा । "सन्तराम, तुमने मुझे दोज़ख़ (नरक) में जाने से बचा लिया । कुछ वर्ष पहले डाक्टर साहब ने छः महीने तक मेरा इलाज करके मुझे मरने से बचाया था । उनके उपकार को जीवनभर भूल नहीं सकता ।" कमर मे घुसाकर रखे नोट के बंडल को बाहर निकालकर सन्तराम के हाथ में देते हुए मसूद कहता है—"मेरे द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के लिए मुझे क्षमा कर दो । पशुवत जीवन व्यतीत करनेवाले डाकू तक दूसरे के किए उपकार के गुण को भूलता नहीं । इसलिए, हम सभ्य कहानेवाले पढ़े-लिखे मनुष्य को कृतज्ञता के महत्त्व को खूब अच्छी तरह समझना होगा । हे मित्र, दूसरे के किए उपकार को सदा याद रखो ।"

पहली निबन्ध-पुस्तिका के उक्त प्रथम लेख द्वारा मित्रसेन ईश्वर के प्रति तथा अपने असंख्य प्रेमी श्रोताओं की सहयोग-सहायता के प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता जताना चाहते थे ।

'अभिमान-निषेध' (4500 शब्द) शीर्षक लेख मे वे लिखते है—(कुछ अंश)

"हे मित्र, अभिमान मनुष्य को ऊपर उठाने के बदले नीचे गिरा देता है । अभिमान के कारण उसने मुझे वैसा क्यों कहा ? वह तुच्छ छोटा, मैं बड़ा, वह भोला, मैं चतुर-इत्यादि मिथ्या विचार मन मे रहते हैं । अभिमान के जाल में उलझकर संसार नरक के समान हो गया है । अभिमान के परिणामस्वरूप सब कुछ गँवाने के बाद होश आए भी तो क्या हुआ, बोलो । बकरे के उदाहरण के समान (संक्षेप में)—

बकरा स्वयं को श्रेष्ठ समझकर म्यां-म्यां करता है ।
किसी को टेरता नहीं, सींग उठाकर-चरता है
धँसाया छुरा कसाई ने, गले में हाय ज्योही
और जोर से मैं-मैं करता, काटता गर्दन ज्योंहीं
अँतड़ी ले गया गानेवाला, दो-चार पैसा देकर
तार बनाने हेतु सुखाया, धूप में तानकर
तार कस सारंगी में, गज से जैसे रगड़ता
मैं-मैं के बदल तू-तू कठिनाई से कहता

कागज़ का फूल देखने में सुन्दर लगता है लेकिन उसमें सुगन्धि एकदम नहीं होती । ऐसा ही अभिमानी व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है—बाहर से देखने पर चकमक लेकिन अन्दर में घृणा-द्वेष और चिन्ता-शोक से खोखला बना हुआ—रिक्त हुआ । ऐसे को जीवन में सुख-शान्ति न मिलकर कदम-कदम पर निराशा अपमान या पराजय का सामना करना पड़ता है । अभिमानी मनुष्य छोटी बुद्धि का अदूरदर्शी होता है । अभिमान के कारण दुर्योधन को श्रीकृष्ण की सेना लेना अच्छा लगा लेकिन विनम्र अर्जुन ने अकेले श्रीकृष्ण को पसन्द किया । फल लगने पर वृक्ष झुकता जाता है, झुकने पर ही कुएँ से पानी निकाल प्यास मिटाई जा सकती है, ऊँची चोटी पर पानी नहीं रहता बल्कि नीचे गड्ढे में ही अमृत जल मिलता है । निराभिमानी विनम्र मनुष्य के मन के अन्दर पवित्र प्रेम निवास करता है—समाज-प्रेम, देश-प्रेम और मानव-प्रेम । इसीलिए हे मित्र, अभिमान को त्यागकर विनम्र बनो, नशे में माता हुआ आँधी-हवा न बनकर, प्रातःकाल की मीठी मधुर शीतल हवा बनो ।"

माता-पिता के वास्तविक संस्कार से और अपने अविरल तप-त्याग तथा सेवा साधना के कारण मित्रसेन एकदम सरल और शान्त स्वभाव के विनम्र व्यक्ति थे । वे अभिमान को समाज, देश और मानव-मात्र के लिए अत्यन्त हानिकारक दुर्गुण समझते थे ।

'हित की बात' के अन्तिम निबन्ध 'प्रेम' (3500 शब्द) में मित्रसेन लिखते हैं—(संक्षेप में)—"हे मित्र, प्रेम ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है । प्रेम में आनन्द ही आनन्द है । संसार को वश में करने का कोई मोहनी-मंत्र है तो प्रेम है । हे प्रेम देवता, तुम मेरे हृदय में बसो, तुम्हारा वास न होने पर संसार में हमारा कल्याण नहीं है । इसी से मारकाट, मारपीट एक दूसरे को दबाकर स्वयं बड़ा बन जाने का भाव संसार में बढ़ रहा है । सांसारिक प्रेम में उलझनेवाले में केवल स्वार्थ दिखाई पड़ता है । प्रेम लड़का-लड़की का खेल नहीं है । प्रेम को पाने के लिए प्राण का मोह भी त्यागना पड़ता है । धन-द्रव्य, इष्ट-मित्र, लोक-लाज इत्यादि को त्यागकर भारी उद्योग करने पर ही कोई-कोई यह प्रेम प्राप्त कर सकता

है । प्रेम पद्य में—

शक्तिहीन विलासी और परजीवी दास,
अविश्वासी का है न कोई काम
कच्चा, न सच्चा, न ढाँचा ही ठीक
आधे ही रास्ते में जाता उसका प्राण ।

ग्वालिनों ने जब सुना कि भगवान कृष्ण के सिर-दर्द की दवा औरतों के पैर की धूल है तो एक चादर में अपने-अपने पैर को झाड़कर धूल की पोटली बनाई और नारद के हाथ में थमा दी । इस पौराणिक कथा के अन्दर उनके पवित्र प्रेम की झलक मिलती है । पंजाब के सूफ़ी सन्त बुल्लेशाह से एक आदमी ने परमात्मा की प्राप्ति का उपाय पूछा । उस समय अपनी फूलवारी में काम कर रहे बुल्लेशाह ने एक फूल के पौधे को उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोपते हुए उत्तर दिया—

क्या मुश्किल है ईश्वर को पाना
यहाँ से उखाड़कर वहाँ लगाना

अर्थात् सांसारिक प्रेम (मोह) से मन को हटाकर (उखाड़कर) ईश्वर प्रेम की ओर लगाना ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय है । प्रेम के वश में होने के कारण राम ने शबरी का जूठा बेर मज़े से खाया और कृष्ण ने विदुर का साग-पात खुशी से ग्रहण किया । बालमित्र सुदामा आए हैं, यह समाचार सुनते ही प्रेमवश भगवान कृष्ण—

सुदामा-सुदामा कहते हुए पागल से
दौड़ते कूदते-फाँदते जहाँ-तहाँ
दरवाज़े पर स्वयं जाकर खुश होते हैं

ढाई अक्षर का यह प्रेम ही संसार मे सर्वश्रेष्ठ वस्तु है । प्रेम से इहलोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं । इसलिए हे मित्र, प्रेम को अपनाओ, प्रेम को हृदय में बसाये रखो ।"

समाज के हित को ध्यान में रखकर मित्रसेन द्वारा लिखे गए उक्त निबन्धों में विशेषतया जन सेवकों को बहुत बड़ी प्रेरणा और मार्गदर्शन की सामग्री प्राप्त होगी ।

अन्य पुस्तिका 'उन्नति की कुंजी' में मित्रसेन ने दो निबन्ध

'सुशीलता' (6500 शब्द) और 'समय की उपयोगिता' (3500 शब्द)—विस्तारपूर्वक लिखे हैं । इसकी भूमिका में उनका उद्‌गार है—"युवावर्ग ही समाज का स्तम्भ है । जिस समाज के युवाओं की शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक (नैतिक) अवस्था अच्छी है, वह समाज अवश्य उन्नति करेगा । अपने प्यारे युवा वर्ग के मार्गदर्शन के लिए यह लघु पुस्तक 'उन्नति की कुंजी समर्पित करता हूँ....।" 'सुशीलता' निबन्ध में उनके विचार (संक्षेप में)

"हे मित्र, शुद्ध आचरण रखनेवाले और मीठा वचन बोलनेवाले सुशील मनुष्य संसार मे जहाँ भी निवास करे, उसे किसी की रोक-टोक नहीं होगी ।........जीभ में विष और अमृत दोनो रस समाया हुआ है । सुशील मनुष्य सदा मीठा वचन बोलकर सफलता रूपी अमृत-रस को चखता है और दुर्वचन बोलनेवाले को जीवन में हमेशा दुःख और क्लेश रूपी विष मिलता है । नरहरिशाह और द्रव्यशाह—दोनों भाई जब खुकुरी (तलवार की तरह एक अस्त्र) द्वारा परस्पर घात कर रहे थे, उस समय राजमाता—दोनों पुत्रों को मधुर वचन से समझाकर शान्त करने में समर्थ हुई । मीठा वचन बहुत सारे क्रोधी घमण्डी अथवा मूर्ख मनुष्य के मन में अनुकूल प्रभाव दिखा सकता है । लक्ष्मण के तीखे वचन से परशुराम का क्रोध बहुत बढ़ गया लेकिन राम के विनम्र मधुर वचन से मुनि शान्त हो गए । फ़ारसी के एक कवि ने कहा है—बशीरीं ज़बानी ब लुत्फोखुशी, तवानी केह पीले बमुएकशी"—अर्थात् मन को आनन्दित करनेवाले मीठे वचन से बलवान हाथी के सिर को बाल से बाँधकर ले जा सकते हैं ।....

मीठा वचन और सही आचरण उन्नति की कुंजी है । लेकिन मन में कुछ, और मुख में कुछ कभी नहीं होना चाहिए । उर्दू के एक शायर के अनुसार—हकीकत में इन्सान वही एक है, जिसकी जुबां और दिल एक है । मन और वचन के साथ-साथ आचरण में भी एकरूपता प्रदान करने वाला मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है । शुकदेव मुनि, महात्मा बुद्ध एवं हजरत ईसा मसीह इत्यादि अनेकानेक महापुरुषों का जीवन हमारे मार्ग दर्शन के लिए पर्याप्त है । जब बिच्छू अपने डंक मारने के स्वभाव को नहीं छोड़ता तो

मनुष्य अपने परोपकारी आचरण को क्यों छोड़ दे ? कोई कितनी ही गाली-गलौज़ करे तो भी सुशील मनुष्य अपने शान्त गंभीर स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता । फाँसी पर झूलते समय भी विरोधियों के हित के लिए अन्तिम प्रार्थना करना उत्कृष्ट आचरण की पराकाष्ठा है, एक ज्वलन्त नमूना है । इसलिए हे मित्र, मीठा वचन बोलने का तथा ठीक आचरण करने का अभ्यास आजीवन करते रहो । यही सुशीलता की कसौटी है, चिह्न है और सुशीलता से ही जीवन में प्रगति का मार्ग खुलता है—सुशीलता ही उन्नति की कुंजी है ।"

मित्रसेन के निबन्ध में समाजोत्थान का विचार-भाव प्रचुर मात्रा मे मिलता है तो भी उनके द्वारा प्रायः प्रत्येक लेख के आरंभ में अथवा बीच-बीच में 'हे मित्र' कहकर सम्बोधन करने के तथ्य से शायद यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने अपने स्वानुभव के आधार पर लिखकर दूसरे के साथ-साथ स्वयं को भी सतर्क रखने की भावना से ही "मित्र" शब्द का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है । वैसे उनका निबन्ध विचारात्मक और निजात्मक दोनों स्तर का है । 'उन्नति की कुंजी' में संकलित उनका दूसरा निबन्ध "समय की उपयोगिता" के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—

"हे मित्र, समय अनमोल वस्तु है । अतः समय को यों ही व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए । समय एक बार बीतकर पुनः कदापि वापस नहीं होता । उर्दू के एक शायर ने लिखा है—"गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं, लगता रहे आस्मां व जमीं—जो समय हमारे हाथ में है, उसका भरपूर उपयोग करके सफलता हासिल करनी पड़ती है । आलसी अपना उद्धार नहीं कर सकता तथा उससे देश या समाज का भला हो सकता है, भी एक व्यर्थ बात है । एक मिनट की देर से रोगी की जान जाने में देर नहीं लगती । यदि हनुमान संजीवनी बूटी लाने में थोड़ी भी देर करते तो लक्ष्मण बच नहीं पाते । नेपोलियन ने अपने इंजीनियरों की निराशाजनक सलाह मानकर समय गुज़ार दिया जिससे एल्पस को लाँघकर रोम के जीतने का उसका स्वप्न पूरा न हो सका । यदि अभिमन्यु ने अपने प्राण को संकट में डालकर चक्रव्यूह तोड़ने का फ़ैसला समय पर न लिया

होता तो पाण्डवों की हार निश्चित थी । यदि अमर सिंह थापा समय (अवसर) पर केवल बैठा रह जाता तो गोरखाओं की वीरता और साहस विश्व-इतिहास में स्थान नहीं पा सकता । नेल्सन ने समय के महत्त्व को समझकर तुरत आक्रमण न किया होता तो शायद इंग्लैंड का इतिहास ही दूसरे ढंग से लिखा जाता ।....

हे मित्र, जीवन में उन्नति की चाह हो या समाज और देश की प्रगति की ओर अग्रसर कराना हो तो मनुष्य को अपने अन्दर के समस्त साहस को बटोरकर यथेष्ट कार्य की सफलता के लिए तुरत कूद पड़ना पड़ता है और निरन्तर प्रयास-परिश्रम करना पड़ता है ।....

एक आदमी मामूली, क, ख जानने वाला बिगुल बजानेवाला, जो फुर्सत के समय आलसी की तरह शराब-दारू पीने, गप्प हाँकने, ताश-जुआ खेलने अथवा रोदी गीत (धान-नृत्य के उत्सव वाला गीत) गाने में न लगकर अंग्रेज़ी सीखता था और ठीक निशाना लगाने का अभ्यास करता था । देखते-देखते उसने सूबेदार का दर्जा हासिल कर लिया । वैसे ही, एक सिपाही फ़ुरसत के समय चित्रकारी का अभ्यास करता था.........आठ-दस वर्ष की कड़ी मेहनत से वह एक प्रसिद्ध चित्रकार के रूप में विकसित हो गया ।........प्रकृति ने प्रत्येक मनुष्य को कोई न कोई विशेष गुण प्रदान किया है । अपने उस गुण को खोजकर एकाग्र मन से अविरल लगे रहने से एक-न-एक दिन सफलता अवश्य मिलती है । जिसने समय की चोटी को पकड़कर काम लेना जाना, वही मनुष्य बुद्धिमान है, वही जीवन में उन्नति कर सकता है । हे मित्र, कुंजी का समय पर सदुपयोग भी उन्नति की कुंजी है ।"

दादा-दादी या माता-पिता, सभी अपनी सन्तान के भले के लिए अथवा उनकी उन्नति के लिए दिल से कामना करते हैं । प्रत्येक युवाहृदय में भी अपने जीवन को सार्थक बनाने का भाव-विचार या स्वप्न विद्यमान रहता है । इस मूल मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझकर मित्रसेन ने हमारे युवा वर्ग के पथ प्रदर्शन के निमित उक्त निबन्ध 'सुशीलता' एवं 'समय की उपयोगिता' का लेखन किया

है । "ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से इस पुस्तिका से कोई-न-कोई लाभ अवश्य पहुँचेगा" मित्रसेन का यह कथन ठीक ही ठहरता है ।

मित्रसेन ने अपनी तीसरी निबन्ध-पुस्तिका 'गहरी खोज' (10,000 शब्द) में कुछ आध्यात्मिक और नैतिक विषयों की व्याख्या अलग-अलग शीर्षकों में की है । जैसे—परमात्मा, विचारशक्ति, वाद-विवाद, मृत्यु, शोक, उद्योग, धैर्य, सन्तोष, चित्र, अच्छा मन, दया, नम्रता, अहंकार, क्रोध इत्यादि । इसकी भूमिका में वे लिखते हैं—"केवल ये लिखी बातें ही सत्य है, ऐसा कहना शायद भूल है, सत्य की कुंजी मनुष्य के हाथ से दूर है । केवल अपने जीवन में पाए अनुभव, किए अध्ययन अथवा किए प्रयोग की कुछ खोज-सामग्री यहाँ समर्पित कर रहा हूँ, त्रुटि होने पर क्षमा-याचना के साथ ।" उक्त निबन्धों का संक्षिप्त परिचय—

"हे मित्र, दिन में सूर्य के प्रकाश के कारण आकाश में तारे नहीं दिखते हैं तो भी ये तारे वहाँ विद्यमान हैं, यदि इस बात में किसी को सन्देह नहीं है तो इस सृष्टि को रचानेवाले सर्वशक्तिमान निराकार परमात्मा के बारे में शंका करना उचित नहीं ठहरता । इसलिए, श्रद्धापूर्वक परमात्मा का भजन ध्यान करो, कृतज्ञ होकर अश्रुधार बहाते हुए उसकी स्तुति पूजा करो और सदा परोपकार का कार्य करते रहो । तभी इस जीवन में सुख-शान्ति और आनन्द पाना संभव होगा ।..........हे मित्र, विचारशक्ति के कारण ही मनुष्य अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है । कमाने, खाने और सोने का काम तो पशु भी करता है । मनुष्य का काम तो है संसार का भला चाहना और दूसरे का भला करना । परोपकार का कार्य करते रहने से हम जीवन की मंजिल पर अवश्य पहुँचेंगे । हमारा लक्ष्य है—जीवन के रहते हुए खूब आनन्द अथवा शान्ति प्राप्त करना । विचार शक्ति का प्रयोग केवल उचित ढंग से करना पड़ेगा ।......हे मित्र, संसार में अलग-अलग तरह के कई मत-मतान्तर है, लेकिन सबका सार एक ही है अर्थात् मानव मात्र का कल्याण । बिगड़ जाओ या भ्रष्ट हो जाओ, ऐसा कोई धर्म नहीं मानता । हमारा धर्म ही सही

है और दूसरे का धर्म हीन है, ऐसा कहकर वाद-विवाद करने से संसार में झगड़ा-फ़साद और अशान्ति फैलती है । वाद-विवाद की बातों में पड़ने की अपेक्षा शान्तचित्त से सत्य की खोज की ओर मन लगाना उचित है ।....

हे मित्र, संसार में जन्म लेने के बाद एक दिन अवश्य मरना पड़ता है । मृत्यु जीवन की अन्तिम परीक्षा है । बहुत वर्षों तक व्यर्थ में ज़िन्दा रहने की अपेक्षा कम उम्र में संसार का उपकार कर मर जानेवाला मनुष्य धन्य है । मृत्यु को सदा याद रखे रहो और जीवित रहते हुए शुभ-कार्य करो । ऐसा करके मरने पर मन में शान्ति रहेगी ।......हे मित्र, प्रिय वस्तु से शोक उत्पन्न होता है । जो मनुष्य मोह के बन्धन में न बँधकर निरासक्त होकर संसार में विचरण करता है, वही शाश्वत शान्ति अर्जित करता है । जिसने जीवन में ही घृणा-द्वेष, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीत लिया है, उसे न तो शोक सताता है और न किसी प्रकार का भय.....।

हे मित्र, बीती हुई बात के बारे में चिन्ता-शोक में न पड़कर एवं भविष्य की सुखद कल्पना में समय बर्बाद न कर मनुष्य को वर्त्तमान को ठीक करने के लिए पूरे उत्साह से उद्योग परिश्रम करते रहना चाहिए । प्रकृति ने सूर्य-चन्द्रमा-तारा-हवा-पानी और पशु-पक्षी, सभी को गीतशीलता प्रदान की है, इसलिए उद्योग-धंधा न कर वैसे ही बैठकर दिन बिताना मनुष्य के लिए उचित बात नहीं है । इसलिए, उद्योग करो, परिश्रमी बनो । ऐसा ही करने से देश, समाज, स्वयं का या अपने परिवार का भला होगा । हे मित्र, जीवन मे दुःख-सुख तो लगा ही रहता है । धैर्यवान मनुष्य ही सच्चा साहसी वीर है । अनेक दुःख कष्टों को सहकर वह आगे बढ़ता है और अपने भाग्य को वह स्वयं बनाता है । दुःख पड़ने पर घबराना नहीं चाहिए और सुख पाने पर ऐंठना नहीं चाहिए । दोनों ही अवस्थाओं में धैर्य को धारण करने से ही जीवन सार्थक होता है ।.......हे मित्र, खूब मेहनत कर सात्विक कमाई करो और जितना भी प्राप्त हो, उसी में सन्तोष रखो । सन्तोषी मनुष्य का मन सदा प्रसन्न रहता है । थोड़े में सन्तोष मानना और शान्तिपूर्वक

जीवन बिताना ही बुद्धिमानी है । बहुत धन जमा करने पर चिन्ता, तृष्णा, लोभ, डाह और क्रोध की वृद्धि होती है । असंतोषी मनुष्य संसार में दुःख, भय, हिंसा और अशान्ति पैदा करता है ।.......

हे मित्र, जिस मनुष्य के चित्त में किसी प्रकार का मैल (मलिनता) नहीं है, जिसे किसी प्रकार का भ्रम-शंका नहीं है, जिसने धर्म की गहरी खोज कर पाप-पुण्य को पहचान लिया है, वैसे निर्मल चित्तवाले सत्यपरायण मनुष्य को किसी प्रकार का दुःख या चिन्ता परेशान नहीं करती और ऐसे को ही जीवनमुक्त कहते हैं । हे मित्र, पवित्र मन-वाला आदमी वही बात बोलता है जो उसके मन में होती है, चाहे वह बात किसी को अच्छी लगे या बुरी लगे । झूठ और छलकपट से युक्त बात करना वह नहीं जानता । अपने लाभ के लिए दूसरे की खुशामद करके वह अपनी आत्मा को कदापि धोखा नहीं देता । इसलिए, मन की पवित्रता को सदा ध्यान में रखो ।........हे मित्र, दया ही धर्म का सार है । फूल अपनी मधुर सुगन्ध से सबके चित्त को प्रसन्न करता है और शीतल वर्षा संतप्त प्राणि को सुख पहुँचाती है । इसी तरह, दयालु बनकर प्रेमपूर्वक व्यवहार करो । ....हे मित्र, सृष्टि के विस्तार को देखते हुए मनुष्य का क्षणभंगुर शरीर विशेष महत्त्वपूर्ण दिखाई नहीं पड़ता । हाँ, हम विनम्र बनकर चलें और संसार के भले के लिए कुछ करते जाँय । सदा झुककर रहनेवाला आदमी ही गुण और शील बटोर पाता है । नम्रतायुक्त मीठी वाणी एवं शिष्ट व्यवहार से वह लोकप्रिय बनता है और उसके द्वारा जनकल्याण का कार्य ठीक ढंग से सम्पन्न हो सकता है ।.......

हे मित्र, प्रत्येक मनुष्य में अहंकार का कुछ अंश तो अवश्य ही रहता है । लेकिन, अहंकार की मात्रा बहुत अधिक होने पर वह घमंडी बन जाता है । घमंडी मनुष्य अहं के नशे में मातकर दुष्ट प्रवृत्ति का हो जाता है, इससे संसार में उपद्रव और अशान्ति फैलती है । इसीलिए, अहंकार को घृणित दुर्गुण समझकर छोड़ने का प्रयास करना पड़ेगा ।.....हे मित्र, क्रोध को वश में रखना बहुत कठिन होता है, लेकिन निरन्तर साधना से क्रोध को रोक सकते हैं । मोह-तृष्णा में लिप्त स्वार्थी लोभी या अहंकारी मनुष्य को बहुत क्रोध आता

है । ईर्ष्यालु और बदले की भावना मन में रखनेवाले भी क्रोधी होते हैं । सभी के साथ हार्दिक प्रेम रखते हुए निष्काम भाव से परोपकार करते रहने से क्रोध रूपी शत्रु पर सहज ही विजय प्राप्त की जा सकती है......।

'गहरी खोज' में संकलित उक्त लेख-माला मित्रसेन के गहन चिन्तन और अध्ययन के बारे में हमें थोड़ा परिचय अवश्य देती है । इन बहुमूल्य विचार सिद्धान्तों को निजी ज़िन्दगी में उतारने और समाज में फैलाने के लिए उनका आजीवन प्रयासरत रहने की बात भी यहाँ उल्लेख्य है ।

भागसू में 13 जुलाई 1944 के दिन सत्संग प्रचारिणी सभा का गठनकर्त्ता मास्टर नत्थूराम बोगटी (छेत्री) बी.ए. बी.टी. के द्वारा दिए गए परामर्श के अनुसार मित्रसेन ने अपनी यात्रा-डायरी लिखनी शुरू की । लेकिन, पुनः बीमारी द्वारा उन्हें ग्रस लिए जाने कारण, उनके पुत्र दिग्विजय सेन ने 1 अक्टूबर 1944 से उनके देहावसान (9 अप्रेल, 1946) तक के यात्रा-वृतान्त को संक्षेप में लिखकर पूरा किया है । यह पुस्तिका सन् 1983 में मित्रसेन साहित्य-संगीत सभा, भागसू-धर्मशाला द्वारा "मित्र की डायरी और कुछ कविता झ्याउरे" नाम से प्रकाशित होने के बाद हमारे साहित्यकारों द्वारा प्रशंसा-पत्र आदि प्राप्त कर चुकी है । इनमें प्रो. इन्द्र बहादुर राई, डॉ. जगत छेत्री, श्री आर. पी. लामा और श्री विपिनदेव ढुंगेल इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

"मित्र की डायरी" (लगभग 5000 शब्द) में जहाँ मित्रसेन ने अपनी रुग्णावस्था एवं बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति के बारे में खुलासा किया है वहाँ उनके द्वारा इसमें अपनी अन्तिम यात्रा का हाल, नौतुना के तत्कालीन सामाजिक जीवन की झाँकी एवं अपनी इच्छा-आकांक्षा के बारे में भाव विचार अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है । संक्षिप्त रूप में—

"..........मैं सन् 1940 के श्रावण महीने में रोगग्रस्त हुआ, बड़ी कठिनाई से इस साल (1944 में) बीमारी ने थोड़ा-सा छोड़ा है । लेकिन, पूर्णरूप से रोगनाश न होने के कारण शरीर काफ़ी निर्बल

है । किसी प्रकार की सात्विक कमाई करने का बल शरीर में नहीं है । इसलिए, सभा के निर्णय के अनुसार समाज पर ही परिवार का भार थोपकर नाममात्र का मिथ्यासेवक होना स्वीकार किया । छिः छिः कितनी अप्रिय बातें करता हूँ, कितना बड़ा आत्मघात मैं करता हूँ । इस प्रकार की आत्मग्लानि लेकर मैंने सभा (सत्संग प्रचारिणी सभा) की कार्यवाही बही में हस्ताक्षर कर दिया ।" (13 जुलाई, 1944) यात्रा वर्णन—"महाजन का ऋण मैं बाद में उतारूँगा, ऐसा निश्चय करके 1 अगस्त 1944 को सुबह साढ़े आठ बजे की डाकमोटर से मैं पानी में भींगता हुआ घर छोड़कर चला (नौतुना की ओर) । गग्गल-शाहपुर कोटला सभी जगहों में पानी झमाझम बरस रहा था । जगह-जगह पर पहाड़ी और मिट्टी खिसकने से सड़कें बन्द थीं, पहाड़ी नदियों की बाढ़ का पानी पूरी सड़क पर बह रहा था—सड़क भी क्या थी, एक ख़ासी बड़ी नदी के समान थी ।.....हड़बड़ाकर टिकट बाबू के पास जाकर टिकट माँगा । वे बोले कि टिकट देने का समय नहीं हुआ है । लेकिन, दुनिया लोभी है, परेशान परदेशी से दो-चार पैसा झाड़ लेने के लिए कह देता है—'अभी समय नहीं हुआ है' यह बात सोचकर उनलोगों को पान-फूल के लिए अलग से भेंट चढ़ाई और कठिनाई से पठानकोट से गोरखपुर तक का चार टिकट 83 रुपया 12 आना खर्च कर इन्टर क्लास का लिया ।"

"अब नौतुना का थोड़ा परिचय देना आवश्यक समझता हूँ । अनुमानतः गोरखाली लोगों का एक सौ घर यहाँ होटल खोलकर बसा हुआ है । ये लोग देश की ओर जाने वाले और इच्छित अवकाश तथा पेंशन में पहाड़ की ओर जानेवाले गोरखाली लोगों को भात-रोटी पकाकर खिलाते हैं । परदेशियों को भात पकाकर खिलाना और मुनासिब दाम लेना सही बात है, धर्म का धर्म होगा और धन का धन मिलेगा । लेकिन यहाँ दूसरी ही जगली चाल देखी । प्रत्येक भट्ठी (होटल) में डम्फा-मादल (बाजा) के साथ युवती (औरत) की तड़क-भड़क है । उनके हाथ से दारू पिलाकर फौजी को जोश में लाते है, अनेक प्रकार हावभाव करके मुँहफट मज़ाक करते हुए

गीत-गीत में ताना मारकर मन को विषय-वासना की ओर आकर्षित करते है और एक ही रात में एक-एक फौजी से ज्यादा से ज्यादा झीट लेते हैं । प्रत्येक भट्ठी (होटल) में कम के कम दस-पन्द्रह फ़ौजी ठहरे मिलेगे । इस हिसाब से मामूली से मामूली भट्ठी वाला भी एक रात में कम से कम तीन सौ रुपया फौजियो से झाड़ लेता है । अहो, कैसी अनीति, कैसा अधर्म इस जगह चल रहा है ।...

"हम सर्वत्र नामी बहादुर और ईमानदार गोरखाली हैं, ऐसी बात तो यहाँ है ही नहीं । जाति का गौरव क्या है, कोई समझ नही है । कितने गोरखाली लोग यहाँ औरत बेचने का काम भी करते है, ऐसा मुझे पता चला । इन जातिच्युत दुखभोगी औरतों से मैंने वहाँ (पंजाब में) मिलकर बात करने की कई बार कोशिश की लेकिन ये औरतें एकदम ही छिप जाती थीं, सामने आती ही नहीं थीं.......अनेक वर्ष बाद आज इसका अर्थ समझ सका । गोरखाली के प्रति उन लोगों का श्रद्धा-विश्वास-माया-प्रेम समाप्त हो चुका था । उनलोगों का हृदय गोरखाली को शायद इस प्रकार धिक्कार रहा होगा—"हे नीच पापी, पत्नी को बेचनेवाली गोरखाली जाति, तुमने हम ग़रीब अबला को धोखे में रखकर हमारे जीवन को सदा के लिए नष्ट कर दिया—अब किस मुँह से हमसे बात करने आए हो ? जाओ, हम दुःखी हैं या सुखी, हमारी ख़बर लेने की ज़रूरत नहीं । तुम हमारा घरबार, इष्ट-मित्र, दीदी-बहन, माता-पिता सदा के लिए छुड़ाकर विदेश में क़ैदी बनाने-वाले नीच गोरखाली हो, जाओ, हम तुम लोगों का मुख नहीं देखेंगे ।".....

"नौतुना में गोरखाली की ऐसी बुरी अवस्था देखकर जातिहितैषी कप्तान बहादुर सिंह बराल के मन में बहुत दुःख हुआ और उनके द्वारा कुछ समय पहले से यहाँ सत्संग-प्रचार के साप्ताहिक कार्यक्रम द्वारा समाज सुधार का काम प्रारंभ हुआ था । इसी सत्संग-योजना को और मजबूत बनाने के उद्देश्य से सत्संग प्रचारिणी सभा, भागसू ने मुझे नौतुना में नियुक्त कर भेजा है ।"............इच्छा-आकांक्षा—जाति सेवा तप और त्याग की माँग करती है लेकिन इसके अन्दर एक अजीब तरह का आनन्द भी है । इसी आनन्द के लोभ के

कारण राधा-फ़िल्म-कम्पनी के डायरेक्टर के प्रलोभन-जाल से मैं बच सका । डेढ़ सौ रुपया मासिक और रहने के लिए घर मुफ़्त दूँगा, कम्पनी में काम करो, ऐसा ज़ोर देकर कहा था । मैंने नहीं माना । गत वर्ष लाहौर में सनातन-धर्म प्रतिनिधि-सभा (पंजाब) के मन्त्री जी ने आग्रह किया था कि सभा में आकर पुनः काम कीजिए, आपको पहले से अधिक वेतन दूँगा । लेकिन मैनें नकारात्मक उत्तर दिया । इसी प्रकार मेरे कई धनी देशी मित्रों ने मुझसे कई बार कहा—आप हमारे पास आकर रहिए, ज़मीन-जगह, गाय-भैंस तथा गृहस्थी के सारे सामानों की व्यवस्था कर दूँगा, आनन्द के साथ जीवन-निर्वाह कीजिए और समय-समय पर धर्म-प्रचार करके उपकार का काम भी कीजिए लेकिन मैंने वह सुझाव भी नहीं माना । मेरी लगन तो अपनी जाति में ही लगी थी, कैसे मैं केवल अपने और अपने परिवार के सुख-आनन्द का विचार करता ? यदि पैसा कमाने की ही इच्छा होती तो मैं क्यों धर्म-प्रचार का काम करते हुए घूमता था ।

उक्त डायरी को लिखने के क्रम में मित्रसेन को अपनी आत्मकथा लिखने की प्रेरणा मिली थी—लेकिन दुर्भाग्यवश उनकी यह अभिलाषा पूरी न हो सकी । इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"इस डायरी को लिखते हुए मन में विचार उठता है कि पुराना जीवन-यात्रा वृतान्त भी लिखूँ, सो भगवान की इच्छा ।"

मित्रसेन का अन्तिम निबन्ध रीड़ी-तीर्थ स्थल (लगभग 800 शब्द) है जो उन्होंने 20 अक्तूबर 1944 के दिन लिखा था जबकि वे सपरिवार वहाँ दर्शन हेतु गए थे । इस लेख का संक्षिप्त विवरण उनके शब्दों में इस प्रकार है—"रीड़ी कृष्ण-गण्डकी के किनारे, अनुमानतः आधा कोस की दूरी पर आबाद है । रीड़ी के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे मनोहर पहाड़ हैं । यहाँ दो-ढाई सौ घर हैं जिनमें साठ-सत्तर घर तो तीन मंज़िला-चार मंज़िला हैं । रीड़ी बाजार दोहरी लाइन में बसा है । कपड़ा-लत्ता, नमक-तेल, तम्बाकू-मसाला आदि की पचास-साठ दूकानें होंगी । बाज़ार की सड़क पर पत्थर का फर्श बिछाया हुआ है ।.........यह रूद्रु नाम की कन्या की तपस्या भूमि

है जिससे इस बस्ती का नाम रीड़ी प्रचलित हो गया है । ऐसा यहाँ विश्वास है । ऋषिकेशव-भगवान का मंदिर यहाँ नदी के किनारे होने के कारण भी इस स्थान का नाम रीड़ी हो सकता है । क्या कहा जाय, मगर भाषा में 'ड़ी' का अर्थ पानी होता है अर्थात् पानी के किनारे ऋषि केशव का पवित्र धाम-रीड़ी ।.....गंगा (कृष्णा-गंडकी) के उस पार भृगु आश्रम है, इस गुफा में भृगु के साथ-साथ अनेक ऋषि मुनियों ने तपस्या की है । गुफा के अन्दर एक अनूठे प्रकार का शिवलिंग है जो भृगु-तुम्बेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है । भृगु आश्रम के नजदीक में ही एक बड़ी गुफा है जिसके अन्दर गणेश भगवान की प्राकृतिक मूर्ति टुकड़ों को जोड़कर बनाई गई है । उन छिद्रों से सदा पानी चूता रहता है ।...भृगु-आश्रम में बहुत सारी योगिनियाँ बसती हैं ।"

उक्त निबन्ध किसी स्थान विशेष के सम्बन्ध में लेख लिख सकने की मित्रसेन की प्रतिभा का कुछ परिचय देता है ।

ठोस सारगर्भित विचार की अभिव्यक्ति निबन्ध के माध्यम से ही अच्छी तरह हो सकती है और इन निबन्धों के साथ-अन्य छोटी कृतियों को पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर सकने से विशेषतया हमारी बालक-बालिका को एवं युवावर्ग को बहुत लाभ पहुँचता, मित्रसेन की ऐसी धारणा थी । लेकिन, धन के अभाव के कारण उनकी यह आकांक्षा उनके जीवन काल मे पूरी न हो सकी । इसी सन्दर्भ में वे 'मित्र की डायरी' (पृ. 16) में लिखते हैं—

"कप्तान साहब बराल के साथ विचार-सलाह करके अपने लिखे भजन-कथा-गीत उपदेश (निबन्ध) आदि को पुस्तकों के रूप में गोरखपुर के किसी प्रेस में छपाकर सत्संग-सभा के माध्यम से बिक्री करता जाऊँगा, ऐसा विचार किया था लेकिन वहाँ की लम्बी बीमारी के कारण लगता है कि मेरी योजना अधूरी रह गई......।"

बुद्ध वाणी

मनुष्य जीवन को अत्यन्त उपयोगी समझकर अनेक बुद्ध-ग्रन्थों को छानकर यह 'बुद्ध वाणी' नामक पुस्तक हिन्दी भाषा में लिखी थी । नेपाली भाषा-भाषी पाठकों के लाभ के लिए इसे नेपाली भाषा में अनुवादित किया है.....। मित्रसेन ने बुद्ध वाणी पुस्तक (3000 शब्द) की भूमिका लिखते हुए 28 अगस्त 1942 में उक्त जानकारी दी थी । ग्रन्थ-संकेत में उनके द्वारा राहुल सांकृत्यायन का नाम तक लिखा गया है ।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान लगभग चार वर्षों की लम्बी बीमारी के कारण मित्रसेन प्रचार-भ्रमण के सिलसिले में कहीं जा नहीं सके । प्रायः घर में ही रहकर उन्होंने अपने इलाज के साथ-साथ बुद्ध और टाल्सटाय-साहित्य का अध्ययन गहराई से चला रखा था । महात्मा बुद्ध के सत्य-अहिंसा आदि सिद्धान्तों को और महान् रूसी लेखक टाल्सटाय के मानव-प्रेम-सन्देश को वे विश्वशान्ति और जनकल्याण के निमित्त अपनी लेखनी के माध्यम से फैलाना चाहते थे । उस समय पत्र-पत्रिकाओं में छपे लड़ाई की भयंकर विनाश-कारी घटनाओं के वृतान्त जहाँ एक ओर मित्रसेन के भावुक हृदय को क्षत-विक्षत कर रहे थे वहाँ दूसरी ओर वे रोग के दुःख-कष्ट को सहते हुए मृत्यु का सामना कर रहे थे । गीता के प्रथम प्रकरण (विषाद योग) में महाकवि व्यास ने जिस ढंग से दुःख सन्तप्त अर्जुन की मनोदशा का वर्णन किया है, लगभग उसी मनःस्थिति में उस समय मित्रसेन रहे होंगे । हृदय की छटपटी, विषाद और दुःख से विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान का अभ्युदय होना संभव है ! लड़ाई में मरे हज़ारों मनुष्यों के मृत शरीर को एवं घायल हुए हजारों-तड़पते

सैनिको को देखकर सम्राट अशोक के मन में भी इसी प्रकार के ज्ञान का उदय हुआ और उनके द्वारा आत्मशान्ति विश्वशान्ति एवं जनकल्याण के लिए बुद्ध-वाणी-विचार को संसारभर में फैलाने का निश्चय एवं प्रयास सम्बन्धी ऐतिहासिक तथ्य सर्वविदित है । महात्मा बुद्ध के दर्शन की सराहना करने वाले पूर्व एवं पश्चिम के अनेकानेक दार्शनिक-विद्वान में महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, राहुल सांकृत्यायन, टाल्सटाय, रोमां रोलां, बर्ट्रेंड रसेल और जार्ज बर्नाड शा आदि के नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं । मित्रसेन द्वारा अनूदित बुद्ध वाणी पुस्तक के कुछ विचार-सार यहाँ संक्षेप में रख देना उचित ही होगा—

मनुष्य जीवन में प्रत्येक को दुःख का सामना करना पड़ता है । दुःख का मूल तृष्णा का परित्याग कर देने मात्र से दुःख का नाश हो जाता है । दुःख-निवारण के आठ मार्ग हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि । तृष्णा से लोभ, स्वार्थ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, स्पर्धा, घृणा, द्वेष, हिंसा, लड़ाई-झगड़ा इत्यादि दुर्गुणों का जन्म होता है, परिणास्वरूप मनुष्य चिन्ता, भय, विनाश आदि दुःख भँवर में पड़ता है । अतः अपने और दुनिया की सुख शान्ति के लिए तृष्णा का परित्याग अत्यन्त आवश्यक है । इस बात की सही जानकारी ही सच्चा ज्ञान है और सम्यक् दृष्टि है । लेकिन, केवल ज्ञान अर्जित करने से नहीं होगा—इसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए पक्का इरादा और दृढ़ प्रयत्न—प्रतिज्ञा कीआवश्यकता पड़ती है और यही प्रतिज्ञा है सम्यक् संकल्प । सच्चा मीठा वचन बोलने से मित्रता बढ़ती है और इससे प्रेम, विश्वास और शान्ति फैलती है—इसीलिए सम्यक् वचन का बहुत महत्त्व है । करुणा, दया दिल में रखकर निःस्वार्थ भाव से परहित कार्य करना ही सम्यक् कर्म है, यही मुक्ति, निर्वाण और शान्ति का एकमात्र रास्ता है ।

ईमानदारी पूर्वक उपार्जित सात्विक कमाई से जीवन-निर्वाह करना और सन्तुष्ट रहना 'सम्यक् आजीविका' का अर्थ है । आसन-प्राणायाम के अभ्यास से मन शरीर को स्वस्थ रखना और

शारीरिक परिश्रम से पीछे न हटना सम्यक् व्यायाम का रहस्य है । रोग, जरा, मृत्यु आदि देह की लाचारी और क्षणभंगुरता, तृष्णादि दुःख के कारण, दुःख निवारणार्थ दृढ़ संकल्प और प्रयास तथा जीवन लक्ष्य (शाश्वत शान्ति) के बारे में स्मरण को सदा मन में ताजा रखना सम्यक् स्मृति है । संयम-ध्यान से मन को शुद्ध-पवित्र एवं एकाग्र करने का प्रयास सम्यक् समाधि है, यही मोक्ष अथवा निर्वाण के मार्ग को बाधा मुक्त कराती है ।

उक्त पुस्तक के प्रारंभ के आवरण-पृष्ठ मे मित्रसेन ने बुद्धं शरणम् गच्छामि, धम्मम् शरणम् गच्छामि, संघम् शरणम् गच्छामि का उल्लेख किया है । इस सन्दर्भ में बुद्ध वाणी में संग्रहीत विचार-संदेश का सारांश यहाँ देना ठीक होगा—

बुद्धम् शरणम्-अपनी बुद्धि की आत्मा की शरण में जाओ । आत्म-निरीक्षण करते रहो । अपनी आँख से देखकर जाँच परखकर, अपनी प्रज्ञा से विचार कर फैसला करो—क्या हितकर है, क्या अहितकर ? किस बात को ग्रहण करें, किसको छोड़ दें ? इसमें किसी परम्परा की, शास्त्र-प्रमाण की अथवा किसी व्यक्ति विशेष की आवश्यकता तुम्हें न पड़े—प्रत्येक बात का निर्णय अपने अनुभव के आधार पर करो । यही सच्चा ज्ञान का मार्ग है, बुद्ध का रास्ता है ।

धम्मम् शरणम्—प्रेम ही अहिंसा है । वैर से वैर कभी शान्त नहीं होगा, वैर तो मात्र प्रेम से शान्त होगा । इसलिए, क्रोध को अक्रोध से जीतो, बुराई को भलाई से जीतो और घृणा को प्रेम से वश में करो । अहिंसा अथवा प्रेम ही परम धर्म है । सत्य वचन अमृत वचन है । सत्यनिष्ठ मनुष्य धर्मनिष्ठ मनुष्य है, धर्मनिष्ठ मनुष्य ही मोक्ष निर्वाण पद का हक़दार बनता है । सत्य एक ही होता है, दूसरा नहीं होता और यह निर्विवाद भी है । सत्य सर्वोच्च धर्म है । संयम को जीवन में अपनाकर दुःख का समूल नाश करो । ब्रह्मचर्य को धारण कर प्राणिमात्र के सेवा-कल्याण के लिए कर्म करो ।अहिंसा और सत्य के पालन के लिए ब्रह्मचर्य पालन अत्यन्त आवश्यक है । ब्रह्मचर्य धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है । अतः

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्म की शरण में जाओ

संघम् शरणम्–दुष्ट, प्रवृत्ति के मनुष्यों को भी संघ बनाने की आवश्यकता पड़ती है, ऐसे में सद्प्रवृत्तिवाले धर्माचारी मनुष्यों के एकता-संगठन को तो और भी शक्तिशाली होना पड़ता है। जब तक तुम लोग आपस में मिलकर संघ का कार्य करते रहोगे, जब तक तुम लोगों में एकता-प्रेम रहेगा, जब तक तुम लोग संघ के नियम के अनुसार चलते रहोगे, जब तक तुम लोग जनकल्याण के भाव को मन में रखकर निरन्तर काम करते जाओगे, तब तक तुम लोगों की उन्नति होती रहेगी। अतः संघ की शरण में जाओ।

नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को सरल ढंग से समझाने के लिए बुद्ध वाणी में कुछ प्रतीकात्मक भाषा-शैली का भी प्रयोग किया गया है। कुछ नमूना–

फेंको,फेंको, इस नाव में जमा हो रहे पानी को फेंको। पानी फेकने से नाव हल्की होगी और इसकी गति तीव्र होती जायगी। इसी तरह तृष्णादि दुर्गुण रूपी पानी को जीवन रूपी नाव से फेकते जाओ, तभी मुक्ति काम मार्ग, शन्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। विषय-वासना रूपी झाड़-झंखाड़ को उखाड़कर शाश्वत शान्ति और निर्वाण का पथ तैयार करो। जिस प्रकार मधुमक्खी फूल का बिना कुछ बिगाड़े मात्र रस चूसकर जाती है, उसी प्रकार मनुष्य भी संसार रूपी फुलवारी का बिना कुछ बिगाड़े-उजाड़े, अपने निर्वाह के लिए केवल उपभोग करता है। चन्दन की सुगन्धि तो मात्र एक क्षण रहती है लेकिन सदाचार की सुगन्धि सदा सबको प्रफुल्लित करती है। अतः सदाचारी बनो। जिस प्रकार सुनार चाँदी का मैल निकाल कर उसे उज्ज्वल और सुन्दर बनाता है, उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य अपने मन के अन्दर के सारे दुर्गुण रूपी मैल को साफ करके शुद्ध-पवित्र बनाने का प्रयास करता है। ख़ाली गागर की आवाज़ अधिक तेज होती है लेकिन भर जाने पर वह शान्त रहता है, इसी प्रकार गुणरहित मनुष्य ख़ाली गागर के समान अहंकारी होता है, लेकिन गुणी मनुष्य का स्वभाव प्रायः शान्त गंभीर और विनम्र होता है। जिस प्रकार पर्वत आँधी-तूफ़ान की परवाह न कर अडिग और अचल रहता है,

उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य अपनी निन्दा अथवा बड़ाई की बातें सुनकर कभी विचलित नहीं होता ।

कुछ अन्य बहुमूल्य उपदेश की बातें—दूसरे का दोष तो सरलता से दिखाई पड़ता है, लेकिन अपने दोष को देखने और सुधारने की आदत बनाने से अपने साथ-साथ दूसरे का भी भला हो जायगा । सोना, चान्दी या धन-दौलत से भी मूल्यवान वस्तु मनुष्य का गुण, शील या अच्छा चरित्र है । सत्संगति से सुख, शन्ति या आनन्द मिलता है और कुसगति से दुःख, कष्ट या भय । कितनी भी विद्या पढ़ो लेकिन यदि आचरण शुद्ध नहीं है तो उससे न तो अपना कल्याण होना संभव है और न दूसरे का । अपने भोजन का गुण और मात्रा जाननेवाला मनुष्य सुख, सिद्धि एवं दीर्घ आयु अर्जित करता है । अतः शुद्ध आहार और शुद्ध आचरण को ग्रहण करो । विजय से वैर उत्पन्न होता है, वैर से कलह, झगड़ा, अशान्ति । पराजय से भी दुःख-क्लेश ही पैदा होता है और दुःख-क्लेश से चिन्ता, भय, अशान्ति । अतएव, शाश्वत शान्ति के लिए विजय-पराजय के भाव-विचार को ही तुरंत छोड़ दो । दूसरे को सताकर सौ वर्ष तक जीवित रहने की अपेक्षा कम ही उम्र में परहित का कार्य करते हुए मर जाने को बेहतर मानो । पराधीनता में दुःख और स्वाधीनता में सुख विद्यमान है, इसीलिए ईमानदारी और परिश्रम से धन-उपार्जन करो और दुःखी लोगों की सेवा भी करो । उच्च कुल में जन्म लेने से ही कोई श्रेष्ठ कदापि नहीं हो सकता । श्रेष्ठ आचरण करनेवाला मनुष्य उच्चकुल में न भी पैदा हुआ हो तो भी पूजनीय है, सम्माननीय है—इस बात को ख्याल रखो । रंग और रूप देखकर धोखा मत खाओ, वह बाहर से देखने में असली लेकिन भीतर से नकली हो सकता है । लोभ के जाल में फँसा हुआ मनुष्य हिंसक, अत्याचारी और भ्रष्टाचारी बन जाता है । अतः धन संचय की ओर बहुत न लगकर गुण संग्रह की ओर लगे रहो ।

और महात्मा बुद्ध के अन्तिम उपदेश संदेश का उल्लेख मित्रसेन ने इस प्रकार किया है—

श्रद्धावान बनो, पाप-कर्म से लज्जा मानो, लोकापवाद से डरो,

विद्या-संचय करो, सत्कर्म मे उत्साह रखो, स्मृति को जाग्रत रखो और प्रज्ञावान-चरित्रवान बनो । सदाचारी बनो, सदाचार से मान-कीर्त्ति बढ़ती है, सभी पर प्रभाव पड़ता है और इससे शान्ति प्राप्त होती है । अपना उद्धार स्वयं करो, आत्मा और बुद्धि की शरण में जाओ, धर्म की शरण में जाओ । मैत्री, मुदिता (प्रसन्नचित्त) करुणा एवं उपेक्षा (अनासक्ति) को सदा पास रखो । जन-हित के लिए सर्वत्र घूम-घूमकर प्रचार करो, साथ ही ब्रह्मचर्य को धारण कर स्थिर रखो । ध्यान-समाधि में थोड़ी सी सफलता प्राप्त करने के बाद इस साधना को बीच में मत छोड़ो । मेरे देह-त्याग के बाद मेरे शरीर को (मूर्त्ति आदि की) पूजा-अर्चना करने के व्यर्थ काम में मत पड़ो, बल्कि मेरे द्वारा बताये गए सत्य-मार्ग पर चलने का प्रयास करो ।

बुद्ध वाणी में संकलित महात्मा बुद्ध के अमृत-वचन या विचार-मानव मात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । विश्वशान्ति एव जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर लिखी एव अनूदित उक्त पुस्तक से हम मित्रसेन के मानवप्रेम, देशप्रेम तथा समाजप्रेम के विषय में कुछ परिचय पा सकते हैं ।

कथा रूपान्तर

पहले से ही मित्रसेन को कतिपय पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों की कथा-सामग्रियों की छानबीन कर काव्य-नाटक और उपदेशात्मक निबन्ध लिखने में रुचि थी । अपनी बीमारी (1940-44) के बीच उन्होंने बुद्ध साहित्य के साथ-साथ टाल्सटाय के कथा साहित्य का गहन अध्ययन किया था । टाल्सटाय की प्रायः प्रत्येक कृति में मित्रसेन को मानव प्रेम का अमर संदेश मिला जिससे उन्होंने उनकी कुछ उत्कृष्ट कथाओं का रूपान्तर गद्य-पद्य दोनों विधाओं में नेपाली भाषा में किया, यह बात यहाँ उल्लेखनीय है । रूपान्तरित पहली कथा 'तीर्थयात्रा' के गद्य (7200 शब्द) और पद्य भाग (660 पंक्ति) का संक्षिप्त परिचय उन्हीं के शब्दों में—

"किसी समय में तानसिंग नगर के समीप में स्थित गहिरी गांव में दो मगर जाति के लोग रहते थे । एक का नाम सर्वजीत और दूसरे का नाम मनबहादुर था ।........दोनों आदमी साठ वर्ष से अधिक के थे । दोनों की आपस में खूब मित्रता थी । धर्म में रुचि होने के कारण दोनों तीर्थब्रत खूब करते थे । पशुपतिनाथ, मुक्तिनाथ, काशी, हरिद्वार, इत्यादि जगहों पर घूम चुके थे । एक बार हिउंलाज माता का दर्शन करने की दोनों की खूब इच्छा थी । दोनों ने अपने-अपने घर का सारा प्रबन्ध करके रविवार की सुबह चन्दन टीका लगाकर घर से विदाई ली ।..........डेढ़ महीना पूरा होते-होते (पैदल) पंजाब की सीमा पर पहुँचे । बीस-पच्चीस दिन बाद मुल्तान होकर सिन्धु देश में पहुँचे । उस वर्ष सिन्धु में वर्षा न होने के कारण भारी अकाल पड़ा था । "भाई, मैं पानी पीकर आपको रास्ते में मिलूँगा" मनबहादुर ने सर्वजीत से कहा और गाँव के एक घर

की ओर बढ़े । भूख के कारण उस घर के सभी प्राणी बहुत सन्तप्त थे । मनबहादुर ने उन लोगों की तन मन धन से खूब सेवा-सहायता की । महाजन के पास जाकर उस रकम का भी भुगतान कर दिया जिसे लेकर चारागाह और खेत गिरवी रखा गया था तथा एक जोड़ा बैल, एक दूध देनेवाली गाय और एक बोरा गेहूँ इत्यादि भी खरीद दिया । इन कार्यो मे एक सप्ताह बीत जाने का पता भी न चला । ....मनबहादुर खूब सबेरे उठकर चल पड़े जबकि सभी सोये हुए थे । ......थैली खोलकर गिनने पर देखाकि मात्र सात रूपया पाँच आना बचा था । इतने पैसे मे तो हिंगलाज जाकर वापस लौटना मुश्किल है, ऐसा सोचकर मनबहादुर पहाड़ घर वापस आ गये । पद्य भाग के कुछ अंश—

तानसिंग के गहिरी गाँव मे, दो मगरलोग रहते थे
गाँव के रिश्ते में बड़े और छोटे भाई, दोनों मिलकर रहते थे
धर्म में दोनो की रुचि थी, जाते मिलकर तीर्थ को दोनों
हो एकत्र शाम मे एक जगह, करते हरिकीर्त्तन दोनों ।

और कथा के अन्तिम भाग से—

सबने पूरी बात सुनी और मन में करते विचार
बहुत दिनों मे आज ज्ञात हुआ, सत्य-धर्म का सार
मेरा शरीर पहुँचा हिंगलाज में, मन (बहादुर) की पहुँची आत्मा,
दुखियो की मदद के कारण खुश हुई हिंगलाज की अन्तर्आत्मा
असहाय का आँसू पोछना ही, बड़ा तीर्थ है जान
दया-प्रेम सिंचित हृदय में, करते बास हरि भगवान ।

पहाड़-घर के ग्रामीण जीवन की झाँकी और अनूठी यात्रा का वर्णन उक्त कथा में हम पाते हैं । साथ ही, इसमें धर्म-जाति की दीवार लाँघकर दुःखीजन की निःस्वार्थ सेवा ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है, ऐसी शिक्षा भी निहित है ।

दूसरी कथा "तीन कुरो" (तीन बात) को मित्रसेन ने गद्य (6600 शब्द) और पद्य (740 पंक्ति) में, दोनों विधाओं में तैयार किया है । कथा के तीन प्रमुख पात्रों—बीरे दमाई, उनकी पत्नी और सन्ते (देवदूत) के द्वारा तीन तथ्यों का पता रोचक ढंग से लगाया जाता

है । पहली बात--दया-भावना एकदम सही गुण है, दूसरी बात— किसी को भी मृत्यु के बारे में पता नही होता और तीसरी बात— पवित्र प्रेम से ही धर्म और उपकार का कार्य सम्पन्न हो सकता है । उक्त कथा के पद्य-भाग का कुछ अंश—

कुछ क्षण बाद उसके मन में दया-भाव जाग्रत हुआ
उसका वह भयावह रूप, तुरत ही समाप्त हुआ
रूप बदलता देखा, आया अति सुन्दर अच्छा रूप
पहली बात तब समझीं मैंने, मिटा मन का सब दुख
आकाश तरफ जब मैंने देखा, मेरे साथी आते थे
उसके प्राण को लेने को, काल की डोरी घुमाते थे
दो-एक घड़ी का मेहमान, करता साल भर बाद की बात
दूसरा सत्य जाना मैने मनुष्य को रहती मृत्यु अज्ञात
ज्ञात हुआ, जहाँ प्रेम है, वहीं है धर्म-उपकार
राक्षसी वृत्ति वाले के मन में, होता लोभ, क्रोध, अहंकार
मानव ही कभी दानव बनता, कभी देवता बनता
अपने शुभ-अशुभ कर्म से, रूप नाना वह धरता ।

यूँ बीरे-दमाई दम्पत्ति की नैतिक और आध्यात्मिक चर्चा में शामिल करके दलित वर्ग के महत्त्व को उजागर करने का प्रयास सराहनीय है ।

तीसरी कथा 'धर्म छोरो' (धर्म का बेटा) में एक जवान लड़के के साहस, उत्साह एवं खोज यात्रा की कथा अलौकिक ढंग से वर्णित है । गद्य भाग में 6200 शब्द और पद्य भाग में 980 पंक्तियों का प्रयोग किया है । कथा का अन्तिम अंश और कुछ पद्य अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ ।

"जबसे मैंने संसार की आशा-तृष्णा का परित्याग किया और स्वार्थ को एकदम छोड़ दिया, तभी से मेरा मन साफ हो गया और डाकू के मन पर भी मेरी शिक्षा का प्रभाव पड़ने लगा । ऐसा होने पर पहली ठूँठ ग़ायब हो गई ।.....अनेक पाप करने के कारण मनुष्य मृत्यु से घबराता है । यदि वह शक्तिशाली बनकर धर्म के रास्ते पर चलता है तो उसे मृत्यु से डरना नहीं पड़ता है । मैंने इस डर

को छोड़ दिया, साथ ही डाकू के लोहे जैसी कठोरता को भी मन से निकाल दिया—अब दूसरी ठूँठ गायब हो गई ।......जब तक हृदय में प्रेम की आग खूब प्रज्ज्वलित नहीं हुई है, तब तक कच्चे झाड़-पात रूपी पापों को नष्ट नहीं कर सकते । मेरे सच्चे प्रेम के कारण डाकू ने अधर्म का रास्ता छोड़कर धर्म के मार्ग पर चलने का निश्चय किया । इसके बाद बची वह तीसरी ठूँठ भी ग़ायब हो गई । कुछ पद्यांश—

प्रेम की आग धधकी जैसे कच्चा डाकू जलता गया
करते बात दोनों आदमी, पहुँचे जहाँ थी कुटिया
देखा, तीसरी ठूँठ भी, हरी होकर गायब को गई
नारंगी का पौधा बढ़ गया, फल झूलने लगे कई ।
प्रेम सिचित हृदय से ही, कोई सुधार कर सकता है
आत्मा के शुद्ध होने पर, ईश्वर भी सहायक होता है ।

समाज और देश प्रेमी जनसेवकों को यथेष्ट रूप में इस कथा से विशेष मार्गदर्शन उपलब्ध हो सकता हे—

चौथी कथा ("तीन योगी' (गद्य भाग,2600 शब्द और) पद्य भाग 260 पंक्ति) का आखिरी अंश तथा कुछ पद्याश का नमूना—

तीन साधु जहाज़ के साथ-साथ समुद्र में दौड़ने लगे और नजदीक में पहुँचकर हाथ जोड़कर स्वामी जी और आचार्य जी को कहते हैं—"हे पूज्य गुरू, हमलोग गुरुमंत्र थोड़ा भूल गये । इसलिए पूछने आए है । कृपा करके एक बार फिर रटा दीजिए ।" साधुओं की ऐसी प्रार्थना सुनकर दोनों गुरु हाथ जोड़कर कहते है—'हे योगेश्वर महान आत्मा, हमलोग पाखण्डी है, हमारी भूल को क्षमा कीजिए, हमारे जैसे अहंकारी और नीच के ऊपर दया कीजिए । आज हमलोगो ने शास्त्र का सार समझा । केवल पढ़ने से नहीं होता बल्कि इससे बहुत जानने-सुनने का अहंकार हो जाता है । जो सही कर्त्तव्य-कर्म करता है, जिसके हृदय में प्रेम और जिसमें विनम्रता का गुण विद्यमान है, उसे ही ईश्वर चाहते है ।....' देखते-देखते तीनों साधु पानी में लुप्त हो गए ।

उक्त कथा का कुछ पद्यांश—

कहते है तीनों साधु, हाथ जोड़, धन्य गुरु
जैसा उपदेश देंगे, वैसा ही करूँगा आज से शुरू
सत्यानन्द ने ज्ञान-ध्यान और कर्मकाण्ड, सभी बताया
ऊं भूर्भुवः स्वः मंत्र भी, जपने को सिखलाया ।

हाथ जोड़कर लज्जित गुरु प्रणाम साधु को करते हैं
क्षमा करो हे योगीजन, विनम्र भाव से कहते है
दिल से पछतावा करते हैं, मिला सत्य का ज्ञान
देखते ही देखते तीनों साधु हुए, जल में अन्तर्धान ।

धन-मान और उच्च विद्या से उत्पन्न अभिमान के नशे में डूबे मनुष्य से जन कल्याण का कोई कार्य शुद्ध रूप में नही हो सकता । समाज-सुधार अथवा देश-सेवा के लिए तप, त्याग, विनम्रता, प्रेम और विशाल हृदय की आवश्यकता पड़ती है । इस कथा में यही बात दिखलाई गई है, ऐसा पाते हैं ।

पाँचवी और अन्तिम कथा 'प्रेममा भगवान' (प्रेम में भगवान) केवल गद्य (8000 शब्द) शैली में लिखी उपलब्ध है । मित्रसेन के द्वारा खोजी गई उक्त उत्कृष्ट कथाओं में इस कथा के प्रमुख पात्र मइते सारकी के द्वारा भगवान का साक्षात्कार कराया गया है, साथ ही, पहाड़-क्षेत्र की किसी धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा की झाँकी भी प्रस्तुत की गई है । संक्षेप में—

"रीड़ी बाजार के समीप एक मइते नाम का मोची रहता था । नेपाली-अंग्रेजी ढंग का बनाने कहने पर भी मइते सुन्दर और मज़बूत जूता बनाता और दाम भी वाजिब लेने के कारण जूता बनवाने वालों की भीड़ कभी कम नहीं होती थी । मइते अपने परिवार के साथ सानन्द दिन काट रहा था ।.....सभी दिन एक समान नहीं होते ।...मइते की पत्नी बीमार हो गई और तीन वर्ष के पुत्र को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई । ग्यारह वर्ष पूरा करके बारहवें में पहुँचते ही पुत्र का भी निधन हो गया । मइते को बहुत ठेस पहुँची और मन विरक्त हो गया । ....दया करके एक साधु ने मइते को ईश्वर भक्तों की चरित्र-कथा की पुस्तक पढ़ने को कहा । महात्माओं

की जीवनी पढ़कर मइते का मन हल्का हुआ और वह अपने काम-काज की ओर पुनः ध्यान देने लगा ।.....माघ की संक्रान्ति तक रीड़ी में तीर्थयात्रियों की भीड़ आने-जाने लगी है । चारों और बत्ती जलाकर चकमक किया गया है । कहीं झ्याउरे गीत, कही ब्राह्मण गीत, कही तरह-तरह का बाजा बजता है । लेकिन, मइते की रूचि इन बातों में नहीं है । सिर्फ ईश्वर-चिन्तन करके अपनी बिछावन पर लेट गया है । रात मे अचानक मइते की नीद खुली । एक अजीब आवाज़ सुनी—"मइते कल मैं मेला देखने आऊँगा, मेरी प्रतीक्षा करना ।"

अगले दिन मइते मेला की ओर गया ।.........रीड़ी नदी को पारकर तथा एक विशाल पेड़ की जड़ में पहुँच कर मइते एक क्षण सुस्ताने के लिए बैठा । पास ही पत्थर की ओट में उसने एक अस्सी वर्ष से अधिक उम्र के बूढ़े को बैठा देखा ।....मइते एक भट्ठी (होटल) में ले जाकर बूढ़े को खिलाता है और भरोसेमन्द कुली का प्रबन्ध करके बूढ़े को घर पहुँचवाता है ।........उस दिन मइते एक असहाय औरत की भी मदद करता है ।........थककर रात मे सोते समय एकाएक मइते को कल रात की बात याद आती है—"मइते, कल मै मेला देखने आऊँगा, मेरी प्रतीक्षा करना । "कहाँ, मेरे पास तो कोई नहीं आया । सोचते-सोचते आँख लग गई । आधी रात में मइते की आँख खुली । उसने कमरे में उजला प्रकाश देखा और सुना—"मइते, मैं आया ।" साथ ही, प्रकाश में उस निर्बल बूढ़े और उस असहाय औरत के चेहरे की झलक देखी ।......

दुर्बल-असहाय के ऊपर दया-प्रेम जताना ही परमात्मा की पूजा-अर्चना है ।

मित्रसेन द्वारा रूपान्तरित टाल्सटाय की उक्त कथाओं में हजरत ईसामसीह के मानव-प्रेम की भावना का संदेश निहित है । संसार का प्रत्येक धर्म मानव-कल्याण एवं विश्वशान्ति की ही शिक्षा देता है । कोई धर्म घृणा-द्वेष और शत्रुता का पाठ नहीं पढ़ाता । 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'—इकबाल के इस विचार से मित्रसेन एकदम सहमत थे । इसीलिए, वे गीता, महाभारत, बुद्ध वाणी एवं टाल्सटाय कथा साहित्य आदि का प्रचार-प्रसार जहाँ-तहाँ करना चाहते थे ।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति अथवा साहित्य के विकास में मास्टर मित्रसेन का महत्त्वपूर्ण योगदान है । कवि द्वारा नेपाली भाषा में सृजित गीता-महाभारत और अन्यान्य पौराणिक या ऐतिहासिक रचनाओं ने जन-जन को लाभान्वित किया है । कृष्ण-अर्जुन, ध्रुव-प्रह्लाद, भीष्म-अभिमन्यु, हरिश्चन्द्र-अम्बरीष, शकर-पार्वती, सत्यवान-सावित्री, कलावती-लीलावती, सूरदास-चिन्तामणि, द्रौपदी-सखुबाई इत्यादि अनेकानेक चरित्रों का चित्रण करके नाटक, व्याख्यान, गीत, संगीत, या ग्रामोफ़ोन रिकॉर्डिंग के माध्यम से जहाँ-तहाँ घूम-घूम कर बहुप्रतिभा-सम्पन्न मास्टर मित्रसेन का प्रचार करने का प्रयास सचमुच अनूठा है, अद्वितीय है । लोक-गीत के आधार पर तैयार की गई उनकी हास्ययुक्त व्यंग्यशैली की विभिन्न रचनाएँ हमारे साहित्य सगीत की विशेष देन है और समाज-सुधार की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । फिर, विश्वशान्ति एवं जन-कल्याण के लिए उनके द्वारा अनुवादित या रूपान्तरित बुद्ध वाणी तथा टाल्सटाय-कथा-साहित्य उनके हृदय की विशालता, संवेदनशीलता एवं दूरदर्शिता का परिचय देते हैं ।

विशेषतया, मास्टर मित्रसेन के नाम की प्रसिद्धि ग्रामोफ़ोन रिकॉर्डों के द्वारा नेपाली भाषाभाषी गोरखाली जगत में सन् 1936 से ही हो गई थी । विश्वयुद्ध के दौरान और भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद लगभग पन्द्रह-बीस वर्षों तक ऑल इण्डिया रेडियो, दिल्ली द्वारा गोरखाली कार्यक्रम के अन्तर्गत उनके गीत-भजन के रिकॉर्ड प्रतिदिन प्रसारित किए जाते थे । गत तीस-पैंतीस वर्षों से, नेपाल रेडियो समय-समय पर मास्टर मित्रसेन के रिकॉर्डों का और उनके

बारे में कुछ परिचय को प्रसारित करता रहा है, यह बात सर्वविदित है । इसी सन्दर्भ में डॉ. जगत छेत्री (दार्जिलिंग) ने लिखा है—बहुत पहले 'दियालो' पत्रिका मे, जब मै सम्पादक था, स्व. मित्रसेन के बारे मे एक लेख छापा था । नेपाल रेडियो के द्वारा भी समय-समय पर उनके सम्बन्ध में की गई चर्चा तथा उनके गीत के प्रसारण की याद है ।"

नेपाली गीत-संगीत के प्रसिद्ध कलाकार नातीकाजी, शिवशंकर, पुष्प लाला और तारा देवी आदि के द्वारा दार्जिलिंग जाकर तथा मिल-जुलकर संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में एक समीक्षात्मक लेख त्रैमासिक पत्रिका 'दियालो' -1961 के जुलाई-सितम्बर अक में छपा था । उसका कुछ अंश है—"आधुनिक नेपाली सगीत में नेपाल के संगीतकारों ने हमें विशेष समृद्ध बनाया है । .....उस समय के संगीतकारों के गीत जातीयता को उतनी आसानी से बदलना अस्वीकार करते हैं । इसीलिए मित्रसेन द्वारा निर्मित रास्ते पर ही वे लोग आगे बढ़े हैं । लोक गीत के अन्वेषक रचनाकार या गायक के रूप में मास्टर मित्रसेन ने हमारे 'झ्याउरे के सम्राट' की उपाधि से ख्याति अर्जित की है ।"

"रिफ्लेकशन्स ऑन नेपाल इण्डिया रिलेशन्स" पुस्तक मे डॉ. यदुनाथ खनाल ने लिखा है—"मित्रसेन द्वारा अपने सरस गीत सगीत एवं समर्पित सेवाकार्यों द्वारा तत्कालीन समाज में प्रचलित शराब-जुआ या अन्य सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध जन-समुदाय की आत्मा को जगाने का और समाज को उच्च नैतिक या सांस्कृतिक स्तर में पहुँचाने का प्रयास सराहनीय है । ...."

इसी सन्दर्भ मे नेपाली साहित्य के गौरव और प्रख्यात नाटककार बालकृष्ण सम का विचार उन्हीं के शब्दों में "हमने भात खानेवाले कीड़े के अस्तित्व के बराबर ही नाम, मान-ऐश्वर्य कमाया तो भी केवल एक दो पीढ़ी तक ही रहूँगा लेकिन मास्टर मित्रसेन का प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, जाति समाज-भाषा के प्रति अपनी सेवा और त्याग के कारण, संसार में ध्रुवतारा की तरह अटल रहेगा । समस्त लोग उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे ।"

इसी प्रकार प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. इन्द्र बहादुर राई (दार्जिलिंग) द्वारा व्यक्त किए कुछ शब्द—"मित्रसेन मात्र एक नेपाली गायक नहीं थे, वे भारतीय गोरखाली समाज का निर्माण करनेवाले निर्माता थे। हम जो भी बन पाए हैं उसमें निश्चय ही मित्रसेन का योगदान है, त्यागदान है।......." तथा नेपाली साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष आर. पी. लामा (दार्जिलिंग) ने लिखा है, "मित्रसेन थापा की अमूल्य कृतियों का प्रकाशन और प्रचार इस समय नेपाली समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है।"......साप्ताहिक पत्र 'हिमालचूली' के सम्पादक विपिनदेव ढुंगेल (विराटनगर) के द्वारा उक्त पत्र में छापी गई टिप्पणी के कुछ अंश—"अनेक वर्षों से प्रतीक्षारत नेपाली लोकगीत संगीत के उत्थानकर्त्ता तथा समाजसेवी मित्रसेन थापा की डायरी तथा कुछ कविता झ्याउरे को पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर समाज का बहुत बड़ा उपकार हुआ है।......आकाशवाणी दिल्ली के भूतपूर्व अधिकारी तथा समाचार उद्घोषक शालिगराम शर्मा का विचार—"मित्रसेन को मैं मात्र भागसू का नहीं, बल्कि समस्त गोरखाली लोगों का एक महान युगपुरुष मानता हूँ। वे एक उच्चकोटि के कलाकार, नाटककार या समाज सुधारक के साथ-साथ गहन विचारक, कवि या लेखक भी थे।........

मास्टर मित्रसेन के अनगिनत प्रशंसकों में से कुछ उनके रिश्ते-नाते-वाले बूढ़े पड़ोसी, सहयोगी, शिष्य एवं जानकार लोगों से भेंटवार्त्ता करके तथा उसी के आधार पर तैयार की गई उनकी संक्षिप्त जीवनी इस छोटी सी पुस्तक में रखी गई है। मित्रसेन के सहपाठी वयोवृद्ध स्व. नत्थूराम थापा (जन्म 1897) से 3 अगस्त 1981 की भेंटवार्ता में कवि के बचपन से देहावसान तक की बहुत सारी बातों के विषय में जानकारी प्राप्त हुई, यह यहाँ उल्लेखनीय है। मास्टर जी की धर्मपत्नी—श्रीमती लाजवन्ती थापा, पुत्र श्री दिग्विजयसेन थापा, भांजा सु. हुशियार सिंह थापा या कै प्यार सिंह थापा ने भी उनके बारे में अनेक प्रामाणिक तथ्य प्रदान किये हैं। उनके सहयोगियों या शिष्यों में सर्वश्री मदन सिंह गुरूंग, हरिचन्द शाही, शिवचरण ठाकुर, रामसिंह ठाकुर (आज़ाद हिन्द फौज का

प्रसिद्ध संगीत-निर्देशक) किशन जंग थापा, भगवानसिंह चौहान और रोशनलाल सूद से बहुत उपयोगी सामग्री प्राप्त कर सका । ब्रि. शेरजंग थापा, क. शिवनारायण सिह गुरूंग, क. दिल बिक्रम सिंह गुरूंग, ले. जगतसिह खंडका, मे. ससार सिंह नेपाली, सू. प्रेम सिंह कारकी, सू. आनन्द सिह थापा आदि महानुभावों से भी उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त हुई । उक्त भागसू निवासी बन्धुओं के अलावा इन पंक्तियो के लेखक द्वारा इस सन्दर्भ में सन् 1951-52 में महाकवि लेखनाथ पौड्याल, बालकृष्ण सम, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा और महानन्द सापकोटा से की गई भेटवार्ता (काठमाण्डू में) द्वारा ही वर्ष भर पहले देहरादून मे श्री याज्ञवल्लभ द्वारा प्राप्त जानकारी एवं गतवर्ष दिल्ली मे श्री डी. एन. जोशी, विधायक (शिलाग) द्वारा कवि के विषय मे प्राप्त व्यक्तिगत अनुभव के बारे में कुछ सस्मरण यहाँ उल्लेखनीय है । साधारण पाठकों के समक्ष मास्टर मित्रसेन की जीवनी और उनकी कृति या उपलब्धि के बारे में कुछ परिचय प्रस्तुत करने के निमित्त ही खास-कर यह छोटी पुस्तक तैयार की गई है । पचास वर्ष के छोटे जीवन-काल में उनके द्वारा भारतीय साहित्य-संस्कृति के निर्माण या विकास के बारे में किए गए ठोस कार्यों ने वास्तव मे हमारे मस्तक को ऊँचा किया है, हम सभी को गौरवान्वित किया है ।